कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

Year 10, Issue 40
Oct.-Dec., 2013

वसुधा

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष १० - अंक ४०, अक्टूबर-दिसम्बर २०१३

एक रहस्य (मूल भाषा - रोमानी)

रिज़ा लाही

भावानुवाद : पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

और अब
श.....
अन्यथा
सूर्य की तरह झुलसती है एक पाँखुरी
अश्रुपात करती है सुबह की ओस-सी
देखते ही देखते
सब कुछ उड़ जाएगा
चकाचौंध नहीं रहेगी कहीं भी
कुछ नहीं
कोई नहीं
और मैं भी नहीं
ओह....
क्या प्यारा पुष्प है!
और मैं जा.....रहा हूँ
श.....

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का राष्ट्रभाषा दर्शन	डॉ. आर.पी.सिंह	३
हिन्दी	मधुप मोहता	७
सपनों का सच	डॉ. गंगा प्रसाद विमल	८
देखा है मैंने	बी.एल. गौड़	१३
आलोक-पर्व की ज्योतिर्मय देवी	हजारी प्रसाद द्विवेदी	१५
अँधियार ढल कर ही रहेगा	गोपाल दास नीरज	१७
पतझड़ के बाद	पद्मा मिश्रा	१९
किसी भटके मुसाफ़िर का सहारा हूँ	रमेश जोशी	२२
अनबरसी बदली	बाल स्वरूप राही	२३
चिन्दी चिन्दी होती हिन्दी, हम क्या करें	डॉ. अमर नाथ	२४
पारित प्रस्ताव	डॉ. पदमेश गुप्त	२९
शापग्रस्त पापग्रस्त समंदर खारे का खारा	डॉ. अशोक चक्रधर	३०
पिता जवाहरलाल नेहरू जी का पत्र पुत्री इन्दिरा के नाम 'संसार पुस्तक है'	अनुवाद : प्रेमचंद	३३
पर्यावरण और हम - पत्थर के ऊपर पत्थर	डॉ. परमानंद पांचाल	३५
विजयादशमी	शकुंतला पाराशर	३६
भगवान धन्वंतरी व यम पूजन का दिन धनतेरस	श्याम नारायण रंगा 'अभिमन्यु'	३७
यह दीपों का पावन उत्सव	डॉ. महेश दिवाकर	३९
धूमिल रेखा	शैल अग्रवाल	४०
रानी लक्ष्मी बाई	सुभद्रा कुमारी चौहान	४१
एक रहस्य	रिज़ा लाही	
भावानुवाद	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१ अ
दीपावली - पाँच अनुभव	देवराज	४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

भारत के ६७वें स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्रपति माननीय श्री प्रणव मुखर्जी जी ने राष्ट्र के नाम संदेश देते हुये कहा था, 'शिक्षा प्रणाली के माध्यम से समाज को फिर से नया स्वरूप दिया जा सकता है। विश्व स्तर का एक भी विश्वविद्यालय न होने के बावजूद हम विश्व शक्ति बनने की आकांक्षा नहीं पाल सकते। इतिहास गवाह है कि हम कभी पूरी दुनिया के मार्गदर्शक हुआ करते थे। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, सोमपुरा तथा ओदांतपुरी, इन सभी में वह प्राचीन विश्वविद्यालय प्रणाली प्रचलित थी, जिसने छठी सदी ईस्वी पूर्व से अठारह सौ वर्षों तक पूरी दुनिया पर अपना प्रभुत्व बनाए रखा। ये विश्वविद्यालय दुनिया भर के सबसे मेधावी व्यक्तियों तथा विद्वानों के लिए आकर्षण का केंद्र थे। हमें फिर से वह स्थान प्राप्त करने का प्रयास करना होगा। विश्वविद्यालय ऐसा वट-वृक्ष है जिसकी जड़ें बुनियादी शिक्षा में और स्कूलों के एक बड़े संजाल में निहित होती हैं जो हमारे समुदायों को बौद्धिक उपलब्धियों का मौका प्रदान करता है। हमें इस बोधि वृक्ष के बीज से लेकर जड़ों तक, तथा शाखा से लेकर सबसे ऊँची पत्ती तक, हर हिस्से पर निवेश करना होगा।' और अंत में उन्होंने अपना वक्तव्य महान ग्रंथ भगवद्गीता के एक उद्धरण 'यथेच्छसि तथा कुरु...' से समाप्त किया था.

२७ अगस्त को हमारे टोराण्टो कोंसुलावास में माननीय श्री अखिलेश मिश्रा जी ने कोंसुलाध्यक्ष के रूप में कार्यभार सँभाला. 'वसुधा' उनका परिवार सहित स्वागत करते हुए यह जान कर गौरवान्वित हुई कि वे साहित्य-प्रेमी हैं, विषेशरूप से हिन्दी और संस्कृत में उनकी अभिरुचि है.

जुलाई में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने टोराण्टो में एक सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना की जिसके संस्थापक संचालक पद्मश्री डॉ. यारलागद्दा लक्ष्मी प्रसाद जी हैं. 'वसुधा' उनका परिवार सहित स्वागत करते हुए गर्वित है कि वे बड़ी तन्मयता से अपने कार्य में संलग्न हैं.

भाषा संस्कृति की वाहिनी है. भाषा और संस्कृति का चोली-दामन का साथ है. भाषा के महती तत्त्व को कौन नहीं जानता. देववाणी संस्कृत ज्ञान ने भारत के अतीत को जिस गरिमामय स्थान पर पहुँचाया था आज उसकी बेटी हिन्दी सभी हिन्दी-प्रेमियों से अपेक्षा करती है कि वे उसके उत्थान में भरसक योगदान देकर भारत के पुराने गौरव को विश्व में पुन: प्रतिस्थापित करें.

साहित्य-प्रेमियों के साथ-साथ लब्ध-प्रतिष्ठित महानुभावों के संसर्ग से उपजी परिश्रमशीलता ही हिन्दी के उत्थान का चरमोत्कर्ष होगा. भाषा, साहित्य और संस्कृति के सार्थक प्रयास सफलीभूत होंगे. हिन्दी के प्रचार, प्रसार, विकास के आस-रूपी तारा-गण साहित्याकाश में सर्वप्रथम टिमटिमाएँगे, फिर चंद्रमा की धवल चाँदनी में बदल जायेंगे. यही नहीं अंततोगत्वा सूर्य-समान प्रखर ज्योति प्रभासित कर विस्तारित होंगे.

यह केवल कल्पना के अश्वों की उड़ान ही नहीं है, यह यथार्थ की सम्भावना, निकट भविष्य के काल-चक्र में उद्भासित् होने का शुभ संकेत है. हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का '८वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन' के अनुष्ठान का स्वप्न, जिसमें कैनेडा से विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था, हिन्दी-प्रेमियों व प्रतिष्ठित महानुभावों की अभिरुचियों से साकार होता प्रतीत हो रहा है. हमें मिलकर एक सशक्त मुट्ठी बनना है. हम अकेले हाथ की ऊँगलियों के समान हैं जो स्वयं कार्यशील हो वह लक्ष्य नहीं प्राप्त कर सकतीं जिसे उनसे निर्मित सशक्त मुट्ठी अपनी गिरफ़्त में ला सकती है.

दीपावली पर्व और नव-वर्ष आ रहा है. 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की कामना है. सबमें आत्म-प्रकाश का उदय हो. घृणा, हिंसा का तिमिर तिरोहित हो. सर्वत्र भाईचारे की मंगलमय सद्भावना से ओत-प्रोत विश्व कल्याण की भावना हो.

सस्नेह

स्नेह ठाकुर

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का राष्ट्रभाषा दर्शन

डॉ. आर.पी. सिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अपने चिंतन से संपूर्ण विश्व को प्रभावित कर 'महात्मा' की उपाधि प्राप्त की थी और विश्व को 'गाँधीदर्शन' की अनुपम सौगात प्रदान की थी। स्वनामधन्य दार्शनिक रोम्या रोलां ने तो गाँधीजी को महामानव घोषित किया था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में लिखा है, "महात्मा गाँधी ने देश के करोड़ों लोगों को प्रभावित किया है, कुछ को कम तो कुछ को ज़्यादा। कुछ ने तो अपने जीवन का मार्ग ही बदल दिया, तो कुछ पर थोड़ा बहुत ही प्रभाव पड़ा अथवा उन पर यह प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। परंतु उनका प्रभाव कभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया और यह कमोबेश निरंतर बना रहा है।" पंडित नेहरू का यह वक्तव्य न केवल भारतीय समाज पर वरन् संपूर्ण विश्व समाज पर बापू के सार्वजनीन प्रभाव की स्वीकारोक्ति तो है ही, इस बात का भी प्रतीक है कि बापू की चिंतन धारा सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वविषयक थी। जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं, जिस पर उन्होंने चिंतन न किया हो। 'रामराज्य', 'अहिंसा', 'सत्याग्रह', 'स्वभाषा' और 'स्वराज्य' गाँधी चिंतन के कुछ प्रमुख बिंदु हैं और कालांतर में 'सुराज' भी उनके चिंतन का अभिन्न अंग बनकर हमारे समक्ष आता है।

जैसा कि उल्लेख किया गया है, गाँधीजी ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू पर न केवल विचार किया वरन् उन पर अपनी सुविचारित और सारगर्भित सम्मतियाँ देकर हमें लाभान्वित किया है। स्वभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर गाँधीजी के वक्तव्य हमें उनके अफ्रीका से स्वदेश लौटने के समय से ही प्राप्त होने लगते हैं। अत: इस संबंध में यह जानना रुचिकर हो सकता है कि राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर उनके विचारों के पल्लवन और सुदृढ़ीकरण का क्रमिक स्वरूप क्या रहा है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के राष्ट्रभाषा दर्शन का विकास ही हमारे विचार का विषय है। बापू के चिंतन का यह क्रम मातृभाषा, स्वभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित होता हुआ राजभाषा तक पहुँचता है। वास्तव में, मातृभाषा से राजभाषा तक उनकी चिंतन धारा को उनके अनुभवों का निचोड़ माना जा सकता है—जहाँ विदेशी सत्ता, विदेशी भाषा के विरोध के साथ ही स्वशासन और स्वभाषा चिंतन को विकसित होते देखा जा सकता है। 'इंडियन ओपीनियन' में २८.१२.१९०७ को ही उन्होंने लिखा था कि "स्वदेशाभिमान की एक शाखा यह भी है कि हम अपनी भाषा का मान रखें, उसे ठीक तरह से बोलना सीखें और विदेशी भाषा के शब्दों का उपयोग यथासंभव कम करें।"

गाँधीजी इस बात को जानते थे कि आजादी की लड़ाई के लिए और उसके बाद स्वतंत्र राष्ट्र के लिए संपर्क भाषा के रूप में किसी एक भाषा का चयन ज़रूरी है, जिसे देश के सभी भागों के लोग आसानी से सीख सकें और स्वीकार कर सकें। इसके साथ ही विदेशी भाषा के बोझ से छुटकारा दिलाना भी उनका प्रमुख लक्ष्य था। शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए सन् १९३७ में वर्धा में २२-२३ अक्टूबर को, गाँधीजी की अध्यक्षता में शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में डॉ. ज़ाकिर

हुसैन, श्री टी.के. शाह, पंडित रविशंकर शुक्ल तथा काका कालेलकर ने भाग लिया था तथा अपने विचार प्रस्तुत किए थे। इस सम्मेलन में शिक्षा के विषय में जो प्रस्ताव पारित किए गए थे, उनमें एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव शिक्षा को मातृभाषा के माध्यम से दिए जाने के विषय में था। गाँधीजी शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा को बनाए जाने के प्रबल विरोधी थे। स्वभाषा की भूमिका के विषय में गाँधीजी ने कहा था, "मैंने अपने देश के बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझा कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर ढोएँ और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि हम स्वयं उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं।"

गाँधीजी का मानना था कि सच्ची स्वाधीनता का मार्ग स्वभाषा से होकर निकलता है। विदेशी भाषा से अपने देश, अपनी संस्कृति के प्रति आदर और प्रेम के विकास की कल्पना करना कोरी मूर्खता होगी और इससे बच्चों का स्वाभाविक, सम्यक् और सर्वांगीण विकास भी संभव नहीं है। ५ फरवरी, १९१६ को काशी नागरी प्रचारिणी सभा में व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा था, "लोगों को अपनी भाषा की असीम उन्नति करनी चाहिए, क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा को प्राप्त होगा जिसमें अच्छे-अच्छे विद्वान जन्म लेंगे और उसी का सारे देश में प्रचार भी होगा।" गुजरात में ५ नवंबर १९१७ को एक सभा को संबोधित करते हुए बापू ने कहा था कि "विदेशी भाषा स्वर्णमयी होने पर भी उपयोगी नहीं हो सकती। हमारी भाषा तृणवत हो तो उसे स्वर्णमयी बनाना चाहिए।"

स्वदेशी और स्वभाषा के प्रति गाँधीजी का आग्रह उन्हें धीरे-धीरे एक ऐसी सर्वमान्य भाषा की खोज़ के लिए प्रेरित करता रहा जो कि इस देश की मिश्रित संस्कृति और भौगोलिक-धार्मिक अनेकता के मध्य सेतु का कार्य कर सके। यह कार्य इतना आसान नहीं था। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि गाँधीजी जन-जागरण के दौरान प्राय: संपूर्ण देश का भ्रमण कर चुके थे और वे देश की सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भाषाई अनेकता के साक्षात दर्शन कर चुके थे। अगर कहा जाए कि उनके हाथ में देश की नब्ज थी तो अतिशयोक्ति न होगी। यही कारण था कि हिंदी भाषी न होते हुए भी उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की वकालत की और इसके लिए सबसे पहले स्वयं हिंदी सीखी। उनका मानना था कि देश की साझी विरासत को जितना रामचरित मानस और गीता ने प्रभावित किया है, उतना किसी और ग्रंथ ने नहीं। १९१७ में, भागलपुर में एक विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि "तुलसीदास जी की भाषा संपूर्ण है, अमर है। इस भाषा में हम अपने विचार न प्रकट कर सकें तो दोष हमारा ही है।" इससे पूर्व १९१६ में, काशी नागरी प्रचारिणी सभा को संबोधन में उन्होंने कहा था कि "जिस भाषा में तुलसी दास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती" इससे बहुत पहले १९०८ में ही गाँधीजी 'इंडियन ओपीनियन' में घोषित कर चुके थे कि "हिंदी लिपि और भाषा जानना हर भारतीय का कर्त्तव्य है। उस भाषा का स्वरूप जानने के लिए 'रामायण' जैसी दूसरी पुस्तक शायद ही मिलेगी।"

इस प्रकार राष्ट्रभाषा संबंधी गाँधीजी का विचार प्रवाह धीरे-धीरे एक सर्वस्वीकार्य और सुगम भाषा की ओर बढ़ता पाया जाता है। उनकी यह खोज़ हिंदी पर जाकर समाप्त होती है और उसके बाद

वे पीछे मुड़कर नहीं देखते तथा हिंदी भाषा का तादात्म्य राष्ट्रीय अस्मिता तथा स्वराज्य के साथ करते हैं। सर्वसामान्य राष्ट्रभाषा की खोज़ की इस यात्रा में वे भाषाई अनेकता, हिंदी-उर्दू, हिंदू-मुसलमान, लिपिगत अनेकता जैसे प्रश्नों से टकराते और उनका सटीक समाधान प्रस्तुत करते हुए नज़र आते हैं। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के बीच अनेकता में एकता का भाव लाना उनका प्रमुख ध्येय था। कहना न होगा कि वे इतने विशाल देश की ज़मीनी हकीकतों से अच्छी तरह वाकिफ़ थे। उन्होंने १९१६ में लखनऊ तथा कोलकाता के कांग्रेस अधिवेशनों में दक्षिण भारतीय राज्यों में राष्ट्रभाषा हिंदी की स्वीकार्यता और उसके प्रचार-प्रसार के प्रयासों की ज़रूरत पर बल दिया था। उन्होंने कहा था कि "जब तक दक्षिण के तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम भाषी लोग भी राष्ट्रभाषा हिंदी का काम-चलाऊ ज्ञान हासिल नहीं कर लेंगे, तब तक सारे भारतवर्ष की एकता और सांस्कृतिक समानता की समस्या हल नहीं हो सकेगी।" उनकी प्रेरणा से राजगोपालाचारी, लोकमान्य तिलक जैसे राजनेता हिंदी सीखकर उसके मुखर समर्थक बनकर सामने आए और श्री श्रीनिवास शास्त्री, रवींद्रनाथ ठाकुर, काका कालेलकर जैसे जननायकों ने हिंदी को सर्वव्यापक राष्ट्रभाषा बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। वर्ष १९१८ में ही गाँधीजी के कनिष्ठ पुत्र श्री देवदास गाँधी ने मद्रास पहुँचकर श्रीमती ऐनी बेसेंट, डॉ. सी.पी. रामास्वामी अय्यर और श्री श्रीनिवास शास्त्री के साथ मिलकर राष्ट्रभाषा प्रचार आंदोलन की शुरुआत की। इस आंदोलन के अंतर्गत कुछ दक्षिण भारतीय युवकों को हिंदी अध्ययन के लिए प्रयाग भेजा गया, जिन्होंने वापस लौटकर प्रचार आंदोलन का ध्वज अपने हाथ में लिया। गाँधीजी ने २१.१.१९२० को 'यंग इंडिया' में 'अपील टु मद्रास' नामक लेख में लिखा था कि "मैं सोच-समझकर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र का कारबार चलाने के लिए या विचार-विनिमय के लिए हिंदुस्तानी को छोड़कर कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सकेगी।" गाँधीजी ने १९२७ में बेंगलूरु में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की। उन्होंने इस दौरान सभा को एक लक्ष्य वाक्य दिया था "Hindi not in the place of the mother tongue, but in addition to it." गाँधीजी की ही प्रेरणा से, १९३७ में मद्रास के सरकारी स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई थी। उन्होंने हिंदी के प्रचार को राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता और भारतीय संस्कृति के एकीकरण से जोड़ दिया। केरल भ्रमण के दौरान उन्होंने १९३४ में हिंदी में व्याख्यान देते हुए सभी केरल वासियों का आह्वान किया कि वे हिंदी अवश्य सीखें।

हिंदी और उर्दू के प्रश्न पर गाँधीजी के विचार 'हरिजन सेवक', 'यंग इंडिया' आदि पत्रों में निरंतर प्राप्त होते हैं। उन्होंने 'हरिजन सेवक' में लिखा था "हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू एक भाषा के मुख्तलिफ नाम हैं। हमारा मतलब आज एक नई भाषा बनाने का नहीं है, बल्कि जिस भाषा को हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू कहते हैं—उसे अंतरप्रांतीय भाषा बनाने का हमारा उद्देश्य है।" इंदौर हिंदी साहित्य सम्मेलन में उन्होंने कहा था कि "हिंदू-मुसलमानों के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिंदी और उर्दू के भेद में है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा-यमुना के संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिंदी-उर्दू के झगड़े में पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे।" हिंदी और हिंदुस्तानी के प्रश्न पर उन्होंने ११ नवंबर, १९१७ को मुजफ्फरपुर में कहा था कि "हिंदी को

आप हिंदी कहें या हिंदुस्तानी, मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिंदी भाषा में करें।"

राष्ट्रीय एकता के लिए एक साझी लिपि के प्रश्न पर भी गाँधीजी ने अपने विचार दिए। उनका मानना था कि चूँकि देश की अधिकांश भाषाओं का मूल एक ही लिपि है, इसलिए नागरी लिपि ही भारत की विभिन्न भाषओं की साझी लिपि का दायित्व निभा सकती है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया था कि ज्ञान और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए भी एक साझी लिपि का होना ज़रूरी है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है, "लिपि विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव सा हो गया है। बंगला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवाय बंगालियों के और कौन पढ़ेगा। पर यदि वह देवनागरी में लिखी जाए तो उसे सभी पढ़ सकते हैं।" हरिजन सेवक में २३.५.१९३६ को उन्होंने लिखा था—"लेकिन इसमें शक नहीं है कि देवनागरी लिपि का एक आंदोलन चल रहा है, जिसका साथ मैं हृदय से दे रहा हूँ और वह यह है कि विभिन्न प्रांतों में खासकर जिन प्रांतों में संस्कृत शब्दों का बहुत उपयोग होता है—बोली जाने वाली तमाम भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को सामान्य लिपि मान लिया जाए।" इस प्रकार उनका यह दृढ़ मत था कि "हिंदुस्तान में सर्वमान्य हो सकने वाली यदि कोई लिपि है तो देवनागरी ही है। मुझे विश्वास है कि देवनागरी द्वारा ही दक्षिण की भाषाएँ आसानी से सीखी जा सकती हैं।"

अत: गाँधीजी की राष्ट्रभाषा संबंधी विचारधारा केवल एकांगी विचार नहीं वरन् एक संपूर्ण दर्शन है। उनका 'राष्ट्रभाषा दर्शन' कोरी भावुकतापूर्ण आदर्श संकल्पना नहीं है, वह वास्तविकता के ठोस धरातल पर अनुभवसिद्ध निष्कर्षों का सार है। वास्तव में उनके 'राष्ट्रभाषा' दर्शन का क्रमिक विकास मानव से महामानव के रूप में उनके व्यक्तित्व के क्रमिक विकास के साथ-साथ होता है। राष्ट्रीय जीवन के अन्य सभी पहलुओं के समान ही उन्होंने इस विषय पर भी गंभीर चिंतन और मनन के बाद अपनी राय प्रकट की। हिंदी को राष्ट्रभाषा और अंतत: स्वतंत्र देश की राजभाषा के रूप में स्थापित करने का उनका प्रयास इस क्रमिक विकास की परिणति थी। अत: आज 'गाँधीदर्शन' के समान ही उनके 'राष्ट्रभाषा दर्शन' पर सम्यक् विचार करते हुए उसे व्यवहार में उतारे जाने की ज़रूरत है।

××××

संदर्भ ग्रंथ :

१. संपूर्ण गाँधीवांङ् मय, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, गुजरात
२. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, गुजरात
३. गाँधीसूक्तिकोश, श्री सतीश कुमार बाबा, न्यू कालोनी, देवरिया
४. नागरी संगम, १९, गाँधीस्मारक निधि, राजघाट, नई दिल्ली-११०००८
५. दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार आंदोलन का इतिहास, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, त्यागराज नगर, मद्रास-१७
६. स्वर्ण जयंती समारोह स्मारिका, मैसूर हिंदी प्रचार परिषद, बेंगलूर

हिन्दी

मधुप मोहता

भाषा तुम माँ हो, शिशु हैं जिज्ञासाएँ,
तुम्हारे अस्वस्ति बोध से, भूखी जिज्ञासाएँ दम तोड़ती रहेंगी।

ऊँची होती रहेंगी इमारतें, लंबी होती जायेंगी परछाइयाँ,
एक दिन सूरज की जड़ें काट देंगी।

सुतलियों में बँधी हिन्दी की अनपढ़ी किताबें
कार्यालय के किसी कोने में धूल खाती रहेंगी।

हम राजभाषा नीति की पोथियाँ छापते रहेंगे।
खोजते रहेंगे उपयुक्त पदों के लिए उचित अधिकारी।

कुरसियाँ भरी होंगी, पर पद रिक्त रहेंगे,
एक दिन निरस्त हो जाएँगे।

हम जो प्रवीण हैं, अँग्रेज़ी प्रमाण-पत्रों से
अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने में व्यस्त हो जाएँगे।

लोग शायद हम पर हँसेंगे,
कि हम हिंदी में हँसते हैं।

सपनों का सच

डॉ. गंगा प्रसाद विमल

बहुत-सी अटकलें, बहुत-सी गप्पें आपने सुनी होंगी, सुनाई होंगी। मैं जो सुना रहा हूँ वह सचमुच गप्प नहीं है। दिक्कत यह है कि मेरे पास ऐसा प्रमाण भी नहीं है कि आपके सामने रख सकूँ कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह एकदम सच है। मैं झूठमूठ प्रमाण जुटा भी लूँ तो आप यकीन कर लेंगे, इसका कम से कम मुझे यकीन नहीं है।

लीजिए, मैं प्रमाण दे रहा हूँ। मैं यानी इस गाथा का लेखक। सीधे-सीधे मैं यह कथा सुना रहा हूँ इसलिए मैं अपने जीवन से ही प्रमाण दूँगा। अप्रैल १९९० में मुझे सोवियत देश की एक संस्था से बुलावा आया। अब वह केवल रूस भर रह गया है। यानी यह सच है कि १९९० में सोवियत संघ था। यह ज़रूर है कि जब हम लोग उस देश में पहुँचे तो हमने लोगों में नए बदलाव के लिए जबर्दस्त आकर्षण देखा। अब लोग खुल्लमखुल्ला अपने नेताओं की, व्यवस्था और कम्युनिस्टों की आलोचना करने लगे थे। यह सब बहैसियत प्रमाण आपके सामने जुटा रहा हूँ। आप चाहें तो मेरी छुट्टी का रिकार्ड भी पलट सकते हैं कि मैं अपने दफ्तर से उन दिनों छुट्टी पर था।

प्रमाणों का एक प्रकरण अभी शेष है। मेरे साथ कुछ भारतीय लेखक भी गए थे। खैर, जब आप लेखक शब्द पढ़ेंगे तो आप अविश्वास से भर उठेंगे। हमारे दौर में लेखकों ने पाठकों से अपना विश्वास खोया ही है... फिर भी आप जो थोड़े बहुत पाठक बच गए हैं कभी-कभी लेखकों की बचकानी कहानियों पर हँसते होंगे। मैं एक ऐसी पाठिका से मिला था जिसने कहा था, आप सब लेखक लोग झूठे होते हैं। प्रेम ओर समर्पण की ऐसी भावुकता-भरी बातें लिखते हैं कि सही जीवन में वैसा कर पाना न केवल असंभव होता है बल्कि कभी-कभी तो बचकाना और फिजूल लगता है। तो माफ करें अब मैं लेखकों की सूची आपके सामने नहीं रखूँगा।

तो उस कान्फ्रेंस में दुनिया भर से लेखक इकट्ठा हुए थे और क्रीमिया जलडमरूमध्य के सिमफेरोपोल शहर में सम्मेलन का उद्घाटन हुआ था। वहीं मुझे एक ऐसे लेखक का परिचय मिला था जो तब के सोवियत संघ के अस्त्राखान इलाके का रहने वाला था और पेशे से वास्तु कलाकार था। वह हमेशा अपने हाथ में एक लंबी-सी फाइल रखता था और अक्सर चुप्पा-सा किसी दूसरी ही दुनिया में खोया रहता था। पहली बार उसे देखकर लगता था कि आप इस आदमी से कभी भी दुबारा नहीं मिलना चाहेंगे। उसका चेहरा डरावना नहीं था। वह आक्रामक ढंग की बातें भी नहीं करता था। बस, उसकी आँखों में एक अजीब-सी खोजीपने की प्रखरता थी। आप सीधे उससे आँखें मिलाएँ तो एक पल भी टिकाए नहीं रख सकते थे। उससे मेरा परिचय हुआ और बस मैं लेखकों की भीड़ के रेले में इधर-उधर हो गया। मैं अस्त्राखान के उस लेखक को भूल ही जाता कि दूसरे दिन सुबह वह मेरे कमरे के बाहर दस्तक देते-देते मुझे पुकार रहा था।

शिष्टाचार के नाते मैं उसे अपने कमरे में ले आया।

'माफ करना,' वह बोला, 'आपको तकलीफ दी। पर यह बहुत ज़रूरी भी था। मैं आपको कुछ रहस्यपूर्ण बातें बताना चाहता हूँ।'

'अवश्य' मैं अचंभे में होते हुए भी सामान्य बनने की कोशिश में था। मैं सोच रहा था कि यह भी उन पागलों में एक होगा जो हर भारतीय को तांत्रिक और ज्योतिषी मानता है। 'पर यहाँ नहीं...' वह बोला, 'क्या आप कुछ देर के लिए मेरे साथ नदी तट पर घूमना पसंद करेंगे?'

मैं असमंजस में था। अभी मैंने दातौन भी नहीं की थी। और कायदे से मैं तैयार भी नहीं था। 'लेकिन... देखिए न...'

मैं जो बोलना चाहता था जैसे वह भाँप गया।

'ठीक है। आप इतनी देर में तैयार हो लें मैं नाश्ता डिब्बों में बँधवा लाता हूँ। कहीं नदी किनारे ही नाश्ता कर लेंगे।'

वह अपने प्रस्ताव पर अमल करने के लिए उठ खड़ा हुआ। केवल शिष्टाचार के नाते मैं उसे 'ना' नहीं कर सका। अन्यथा आज यानी उस दिन, छुट्टी के दिन मेरे पास इतना अधिक लिखने-पढ़ने का काम था कि मैं सारा दिन अपने आप में ही व्यस्त रहकर बिता सकता था। अभी ये सारी बातें मैं आपको प्रमाण के तौर पर बता रहा हूँ। आप सिमफेरोपोल के उस एकमात्र बड़े होटल के अप्रैल के पहले रविवार के दिन होटल की हिसाब वाली किताब में दो नाश्तों के डिब्बे बंद होने की तसदीक कर सकते हैं। याद रहे उस किताब में हम दोनों के नाम और कमरों के नंबर भी दर्ज हैं।

होटल से बाहर हल्की-सी ठंड का बड़ा जादुई असर हुआ। वह तनाव जो एक फालतू किस्म के आमंत्रण को कुछ ज़्यादा ही फालतू मान लेने के अनुमान से पैदा हुआ था, एकदम काफूर हो गया था। होटल के पास ही नदी तट था। और दूर-दूर तक जहाँ तक देखा जा सकता था चेरी के फूल लदे बेहद खूबसूरत पेड़ थे। सचमुच वह एक दिव्य दृश्य था। उसे देखकर हिमालय के बर्फ लदे पहाड़ याद आने लगे थे।

'बिल्कुल परियों की कहानी में पढ़े विवरणों जैसा है यह दृश्य' वह बोला।

मैंने दृश्य पर मोहित होते हुए अपना सिर हिलाया।

'हुआ यह कि रात में मुझे सपना-सा आया कि नदी तट के सभी पेड़ों पर फूल लद आए हैं।'

हम तट की तरफ एकदम नदी जल की कल-कल सुनते आगे बढ़े जा रहे थे। पानी का झाग सुबह के सूरज की रोशनी में कुछ ज़्यादा ही चमक रहा था। पानी में घरों से फेंके गए कागज़, खाली डिब्बे और पेड़ों से टूटी टहनियों के छोटे-छोटे गुच्छे बहे जा रहे थे। अनिर्दिष्ट-सी किसी दिशा की ओर...।

'आप कल्पना भी नहीं कर सकेंगे कि मैंने आपको क्यों तकलीफ दी? मैं जो आपको बताना चाहता हूँ उस पर आप यकीन कर लेंगे - मुझे भरोसा नहीं। पर जैसे आप यह छोटी-सी बहती नदी देख रहे हैं - चेरी के ये पेड़ देख रहे हैं - ठीक वैसी ही मेरी बातें हैं। हम आपस में एक दूसरे की बातों पर यकीन तभी करते हैं न कि हमें ऐसे विश्वसनीय आदमी के जरिए मिल रही हैं जिसे हमारा विश्वास प्राप्त है।'

मैं सहमति में सिर हिलाए जा रहा था।

'थोड़ी देर हम कहीं बैठ न लें...' उसने कहा, सड़क के उपर चेरी के पेड़ों के नीचे चबूतरे से बने हुए थे। पर उन पर ज़्यादातर जोड़ेनुमा युवक-युवतियाँ बैठे हुए थे और अपने देश में बोलने की आज़ादी का उपयोग वे एक दूसरे के चुंबन लेते कर रहे थे। थोड़ी ही दूर पर नदी किनारे ही चेरी पेड़ के गिर्द बड़े-

बड़े पत्थरों से बना एक चबूतरा था। हम वहीं बैठ गए। उसने अपनी बड़ी फाइल खोलनी शुरू की। उसमें विचित्र से डिजाइनों वाले कागज़ ठुँसे थे। वह उन्हें एक-एक कर पलट रहा था।

'मैंने अपने 'ड्राइंग्स' सब इसी में रखे हुए हैं। असल में मैं एक ऐसे घर का निर्माण करना चाहता था, जिसमें आदमी नीरोग जी सके।'

उसकी बात समझने के लिए मैं केवल प्रतीक्षा कर रहा था कि कोई सूत्र हाथ लगे।

'असल में बहुत दिन हुए हमारे घर में मुझे और मेरे भाई को कुछ विचित्र से अनुभवों का सामना करना पड़ा। सही तथ्य यह है कि मेरे भाई के दूसरे लोकों के आदमियों से संबंध स्थापित हो गए।'

'क्या कहा - दूसरे लोक... यानी कि आप भी यकीन रखते हैं कि कहीं कोई अन्य लोक है। इस तरह की, एक जैसी कथाएँ मैंने भी अखबारों के माध्यम से पढ़ी हैं। पर वे घोर निराश करती हैं। उनमें कोरी गप्प के अलावा शायद कुछ होता ही नहीं।'

'पहले मैं भी ऐसे ही सोचता था।'

'मुझे लगता है साम्यवाद की पकड़ ढीली होने के बाद आपके देशवासी भी इस तरह के अंधविश्वासों के शिकार होने लगे हैं।'

'आप मेरी बात तो सुनें। मेरे छोटे भाई का संपर्क उन लोगों से बीस बरस पूर्व हो गया था। तब दुनिया के अखबारों में विचित्र मानों की ही खबरें छपती थीं।'

'बस,' मैं कहना चाहता था कि बस कहकर मैंने उसे रोक दिया।

'अगर मैं आपकी जगह होता तो मुझमें भी अविश्वास जागता। आप हैरान होंगे, शुरू-शुरू में मेरे छोटे भाई ने जब मुझसे इस तरह की बातों का जिक्र करना शुरू किया तो मुझे लगा उसका दिमाग फिर गया है... कब कैसे उसे यह अनुभव आए - यह तो पुराना किस्सा है, और लंबा भी। मैं तो एक लंबी किताब इन अनुभवों पर बनाने वाला हूँ...।'

मैं चेरी के फूल देखने लगा। मुझे उकताहट ने आ घेरा था। मुझे फूलों के तथ्य अब जैसे मोहित करने में असमर्थ हो गए थे।

'मैं शुरू-शुरू के अपने अनुभव सुनाऊँ।' उसने मुझे चुप देखकर कहा, 'शायद इसमें आपकी दिलचस्पी न हो...'

'नहीं... नहीं... क्या बात कर रहे हैं आप!' मैंने उसे दिलासा देते हुए कहा, 'आप कहिए न?'

'अस्त्राखान भी अजब जगह है। वहाँ ज़्यादातर लोग इस्लाम को मानने वाले हैं। मेरी बहन एक बार ईश्वर की प्रार्थना कर रही थी कि उसे कुछ ऐसा अहसास हुआ जैसे कोई लंबे चोगे वाला आदमी आसपास आया हो। अब हालाँकि उसकी शादी हो गई, वह मुझसे कुछ ही बड़ी थी। एक ऐसी राज़दार कि मैं सोचता हूँ उसे मेरी हर बात पता है और मैं... मैं उसकी हर बात जानता हूँ।'

'वह अब भी वहीं अस्त्राखान में रहती है?'

'नहीं! मध्य एशिया में उसका पति कहीं काम करता है। बहुत दिनों से मुझे उसकी खबर नहीं मिली।'

'लेकिन आप तो मुझे कुछ बताने वाले थे?'

'हाँ... हाँ,' उसने जैसे कुछ याद करते हुए कहा, 'वही तो बता रहा हूँ। मेरे छोटे भाई ने सहसा एक दिन मुझे बताया कि वह पारलौकिक लोगों के संपर्क में है। सामान्य रूप से जैसा इस अवसर पर कहते हैं वही मैंने भी कहा कि तुम अपना इलाज़ करवा लो। पर वह इतना दृढ़ था कि उसने मुझे आश्वस्त किया कि एक दिन मुझे सत्य का परिचय करा कर ही रहेगा।'

'तो क्या आपको...'

'वही तो कह रहा हूँ। एक सुबह उसने मुझे उठाया और अपना हाथ मेरे मुँह पर रखकर कुछ भी कहने से वर्जित करते हुए खिड़की की ओर इशारा किया। बस वही क्षण था कि उसके हाथ की गर्मी जैसे मेरे शरीर में प्रवेश कर गई... पर यह जादू-सा भी तो हो सकता था...।'

'क्या महसूस हुआ आपको?'

'मुझे लगा उसके हाथों में बहुत गर्मी है। कुछ ही पल बाद मुझे खिड़की के पर्दे पर कोई आकृति उभरती दिखाई दी...।'

'तमाम वृत्तांतों में, जो भी आपने अखबारों में पढ़े होंगे - यही कुछ कहा जाता है। इसमें कुछ नया नहीं है।'

'शायद आप ठीक ही कहते हों। लेकिन मेरा अनुभव...' उसकी आँखों में विचित्र-सी चमक आ गई।

'मेरा खयाल है, जब भी हम अपनी बातों को पुष्ट करना चाहते हैं तो हम प्रमाणों का सहारा लेते हैं।'

'प्रमाणों का सहारा - आपका मतलब... आख़िर आप कहना क्या चाहते हैं?'

'यही कि जिस बात को आप कर रहे हैं मैं उसे वैज्ञानिक गल्पों पर आधारित फिल्मों में देख चुका हूँ।'

वह हँसा। मेरी ओर उसने बेचैनी से देखा।

'देखिए, अब अगर मैं कहूँ कि रात में ही मुझे दूसरे लोक से संकेत मिला है कि मेरे रहस्यों को जानने की यदि किसी में पात्रता है तो वह उस भारतीय में है...'

और 'उस भारतीय' कहते हुए उसने मेरा नाम जोड़ा। एक ऐसी स्थिति थी कि मैं उसमें फँस गया था। हम लोग वहाँ से उठे और नदी तट पर उसके उद्गम की ओर चलने लगे। सिमफेरोपोल एक बेहद खूबसूरत जगह है। नदी किनारे घरों की सुंदरता देखने लायक चीज़ थी। कहीं-कहीं छोटे-छोटे बच्चे खेल रहे थे। कहीं सुंदर महिलाएँ अपनी सखियों से बतिया रही थीं। और कहीं-कहीं श्वेत पाखियों के झुंड आसमान में - नीले, सघन नीले आसमान में घूम रहे थे...

'आपको मैं बताना चाहता हूँ कि जब मेरा संपर्क दूसरे लोक के लोगों से हो गया तो उन्होंने मुझे अपना काम करने से बरजा। उन्होंने कहा कि मुझे ऐसा घर नहीं बनाना चाहिए जिसमें नीरोग जीवन हो...'

'कितने लोग मिले आपको... और उनका क्या अधिकार कि वे आपको अपना काम करने से रोकें!'

उसने फाइल में से एक लंबा कागज निकाला जिसमें एक विशाल भवन का नक्शा था। वहाँ अनेक गुंबदों के बीच एक बड़े गुंबद का चित्र था।

'मैंने इसे 'मॉडल' के रूप में भी बनाया था। पर मॉडल के बीचों-बीच पिरामिडनुमा एक तिकोनाकार गुंबद उस लोक के लोग उठा ले गए। वे लोग सुदूर आकाश के शून्य में से आते हैं। उनका कहना है कि 'हाड़-माँस' की आकृतियों में बने मनुष्यों को बहुत कष्ट सहने पड़ते हैं।'

'तो क्या उनके लोक में कष्ट नहीं हैं?'

'कुछ ऐसा ही समझ लीजिए। एक बार मैंने उनमें से एक आकृति से प्रार्थना की कि वह मुझे अपने लोक का दर्शन करा डाले। उसने कहा, संभव नहीं है यह। फिर भी मैं ज़िद करता रहा। वह समझिए एक ऐसी आकृति थी जो झिल्ली के पतले परदे से ढकी थी। अंत में वह मेरी बात मान गया, बोला, रात में सपने में तुम हमारी बस्ती देखना, उसके बाद ज़रूरी हुआ तो तुम्हें अपने लोक में ले जाएँगे।'

'तो क्या वे ले गए?'

'पहले सपने की बात तो सुनिए। उस रात मैंने सपना देखा कि एक पूरा शहर है जहाँ घर हैं पर घरों की दीवारें नहीं हैं, पेड़ हैं पर पेड़ों की जड़ें नहीं हैं, लोग हैं पर लोगों के चेहरों पर दुख नहीं... ऐसी अविश्वसनीय दुनिया देखकर मेरी नींद जल्दी ही उचट गई... यह सपना बराबर अनेक दिनों तक मेरा पीछा करता रहा... पर मैं उसे पूरा नहीं देख पाया... मैंने फिर उस लोक के लोगों से मिलने का प्रयत्न किया और जब मैं मिला तो वे बोले कि तुम सपना पूरा देख ही नहीं रहे हो...'

'उनमें से दो लोग थे जो एक नली जैसे अंतरिक्ष यान में बैठकर आए थे और दो लोग खुद जैसे उभर आए थे...'

'वाह... अवतारी पुरुष थे वे...।'

उसे गुस्सा आ गया, 'आप अविश्वास करिए पर तिरस्कार न करिए। मैंने ज़िद की तो उन्होंने वहीं बैठे-बैठे मुझे अपनी दुनिया दिखाई।'

'कैसे?'

'वही तो मुझे यकीन नहीं हो रहा है। बैठे-बैठे मेरी आँखों के सामने एक हरी-भरी घाटी दिखाई दी। घाटी में वैसे ही मकान थे... वैसे ही लोग... वे लोग बहुत सुखी थे... वे एक दूसरे की सहायता कर रहे थे... एक दूसरे के प्रति आभार व्यक्त कर रहे थे... वे सुखी थे... मैंने उनसे प्रार्थना की... अनुरोध किया कि क्या वे ऐसे लोक का एक टुकड़ा, एक छोटा-सा टुकड़ा हमारी धरती को नहीं दे सकते...'

मैं क्रीमिया जलडमरूमध्य के शहर सिमफेरोपोल को दुबारा देखने लगा था। 'क्या इतना ही खूबसूरत इलाका आपने देखा?'

'वह दृश्य दिव्य था... पर मेरे पास तो असंख्य सूचनाएँ हैं। उस लोक के आदमियों ने बताया कि बस बरस-दो बरस में और भी कहर बरसने वाला है...'

अब मैं क्या कहता। मैं ख़ुद उसके सपने में जैसे शामिल हो गया था। मैं भी देखने लगा कि उस सपनों के देश में लोग सुखी हैं... काश, हम वैसा ही कुछ यहाँ ले आते...

प्रिय पाठक, अस्त्राखान का आदमी झूठ भी बोल सकता है... हम सब सच की दुनिया से झूठ की दुनिया की तलाश में हैं। कितने बरस बीत गए हैं अस्त्राखान के आदमी को मिले हुए... तब से अब तक मैं लगातार वह सपना देख रहा हूँ... मैं सोचता हूँ, यह जीवन उलट होता। जो कुछ इस ओर दिखाई दे रहा है वह सपना होता और जो कुछ उस ओर दिखाई दे रहा है वह सच होता... मैं फिर किसी दिन बताऊँगा, वह कब होगा... और कब उस लोक के लोग अपनी धरती का एक टुकड़ा हमें देंगे... कभी-कभी मुझे खयाल आता है, सपने में सही... सपनों में तो वह टुकड़ा हमें हासिल कराया हुआ है... बस अस्त्राखान के वास्तुकार के उस भवन का इंतजार है। सपनों में ही सही... कुछ दिन हमारी दुनिया के लोग वहाँ रह लें...।

देखा है मैंने

बी. एल. गौड़

देखा है मैंने
चढ़ती हुई धूप का ढलना
सपनों का बिखरना
राजमहल का
बनने से पहले धराशाही होना

पाकर सब कुछ
सब कुछ खोना
और इसके अतिरिक्त
देखा है मैंने
आदमी का हिमखंड सा गलना।

देखा है मैंने
पीली सरसों के सागर पर
लहरों का मचलना
झूमती हुई बाजरे की बालों का आलाप
टीक दोपहरी में
पलाशों का दहकना
घमंडी सूरज का
धीरे धीरे, अंधकार के सागर में उतरना।

देखा है मैंने
कामगारों का लोहे से लोहा लेना
उनके स्वेदकणों का
तप्त लोहे पर गिर कर
संगीत के आठवें स्वर को जन्म देना
और जब तब
तालाबंदी के बाद
उनके मन के हरे गाछ का
ठूँठ में बदलना।

आलोक-पर्व की ज्योतिर्मय देवी

हजारी प्रसाद द्विवेदी

'मारकंडेय पुराण' के अनुसार समस्त सृष्टि की मूलभूत आद्याशक्ति महालक्ष्मी है। वह सत्व, रज और तम तीनों गुणों का मूल समन्वय है। वही आद्याशक्ति है। वह समस्त विश्व में व्याप्त होकर विराजमान है। वह लक्ष्य और अलक्ष्य, इन दो रूपों में रहती है। लक्ष्यरूप में यह चराचर जगत ही उसका स्वरूप है और अलक्ष्य रूप में यह समस्त सृष्टि का मूल कारण है। उसी से विभिन्न शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। दीपावली को इसी महालक्ष्मी का पूजन होता है। तामसिक रूप में वह क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, कालरात्रि, महामारी के रूप में अभिव्यक्त होती है; राजसिक रूप में वह जगत का भरण-पोषण करने वाली 'श्री' के रूप में उन लोगों के घर में आती है, जिन्होंने पूर्व-जन्म में शुभ कर्म किये होते हैं; परन्तु यदि इस जन्म में उनकी वृत्ति पाप की ओर जाती है तो वह भयंकर अलक्ष्मी बन जाती है। सात्विक रूप में वह महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती के रूप में अभिव्यक्त होती है। मूल आद्याशक्ति ही महालक्ष्मी है।

शास्त्रों में ऐसे वचन भी मिल जाते हैं , जिनमें महालक्ष्मी या महासरस्वती को ही आद्याशक्ति कहा गया है। जो लोग हिन्दू शास्त्रों की पद्धति से परिचित नहीं होते हैं, वे साधारणतः इस प्रकार की बातों को देखकर कह उठते हैं कि यह बहुदेववाद है। यूरोपिय पण्डितों ने इसके लिये ' पालिथीज्म ' शब्द का प्रयोग किया है। पालिथीज्म या बहुदेववाद से एक ऐसे धर्म का बोध होता है, जिसमें अनेक छोटे-बड़े देवताओं की मण्डली में विश्वास किया जाता है। इन देवताओं की मर्यादा और अधिकार निश्चित होते हैं। जो लोग हिन्दू शब्दों की थोड़ी भी गहराई में जाना आवश्यक समझते हैं, वे इस बात को कभी नहीं स्वीकार कर सकते। मैक्समूलर ने बहुत पहले बताया था कि वेदों में पाया जाने वाला 'बहुदेववाद' वस्तुतः बहुदेववाद है ही नहीं, क्योंकि न तो वह ग्रीक-रोमन बहुदेववाद के समान है, जिसमें बहुत-से देव-देवी एक महादेवता के अधीन होते हैं और न अफ्रीका आदि देशों की आदिम जातियों में पाये जाने वाले बहुदेववाद के समान है, जिसमें छोटे-मोटे अनेक देवता स्वतंत्र होते हैं। मैक्समूलर ने इस विश्वास के लिये एक शब्द सुझाया था-हेनोथीज्म, जिसे हिन्दी में ' एकैकदेववाद ' शब्द से कुछ-कुछ स्पष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार के धार्मिक विश्वास में अनेक देवताओं की उपासना होती अवश्य है, पर जिस देवता की उपासना चलती रहती है, उसे ही सारे देवताओं से श्रेष्ठ और सबका हेतुभूत माना जाता है। जैसे, जब इन्द्र की प्रार्थना का प्रसंग होगा, तो कहा जाएगा कि इन्द्र ही आदिदेव है; वरुण, यम, सूर्य, चन्द्र, अग्नि सबका वह स्वामी है और सबका मूलभूत है। पर जब अग्नि की उपासना का प्रसंग होगा, तो कहा जायेगा कि अग्नि ही मुख्य देवता है और इन्द्र, वरुण आदि का स्वामी है और सबका मूलभूत देवता है, इत्यादि।

परन्तु थोड़ी और गहराई में जाकर देखा जाये तो इसका स्पष्ट रूप अद्वैतवाद है। एक ही देवता है, जो विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। उपासना के समय उसके जिस विशिष्ट रूप का ध्यान किया जाता है, वही समस्त अन्य रूपों में मुख्य और आदिभूत माना जाता है। इसका रहस्य यह है कि साधक

सदा मूल अद्वैत सत्ता के प्रति सजग रहता है। अपनी रुचि और संस्कारों और कभी-कभी प्रयोजन के अनुसार वह उपास्य के विशिष्ट रूप की उपासना अवश्य करता है, परन्तु शास्त्र उसे कभी भूलने नहीं देना चाहता कि रूप कोई हो, है वह मूल अद्वैत सत्ता की ही अभिव्यक्ति। इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों की इस पद्धति का रहस्य यही है कि उपास्य वस्तुतः मूल अद्वैत सत्ता का ही रूप है। इसी बात को और भी स्पष्ट करके वैदिक ऋषि ने कहा था कि 'जो देवता अग्नि में है, जल में है, वायु में है, औषधियों में है, वनस्पतियों में है, उसी महादेव को मैं प्रणाम करता हूँ।'

आज से कोई दो हजार वर्ष पहले से इस देश के धार्मिक साहित्य में और शिल्प और कला में यह विश्वास मुखर हो उठा है कि उपास्य वस्तुतः देवता की शक्ति होती है। यह नहीं है कि यह विचार नया है, पहले था ही नहीं, पर उपलब्ध धार्मिक साहित्य और शिल्प और कला सामग्री में यह बात इस समय से अधिक व्यापक रूप में और अत्याधिक मुखर भाव से प्रकट हुई दिखती है। इस विश्वास का सबसे बड़ा आवश्यक अँग यह है कि शक्ति और शक्तिमान् में कोई तात्विक भेद नहीं है, दोनों एक हैं। चन्द्रमा और चन्द्रिका की भाँति वे अलग अलग प्रतीत होकर भी एक हैं- 'अन्तरं नैव जानीमश्चन्द्र-चन्द्रिकयोरिव।' परन्तु उपास्य शक्ति ही है। जो लोग इस विश्वास को अपनी तर्कसम्मत सीमा तक खींचकर ले जाते हैं, वे शाक्त कहलाते हैं। जो शक्ति और शक्तिमान् के एकत्व पर अधिक जोर देते हैं, वे शाक्त नहीं कहलाते। मगर कहलाते हों या न कहलाते हों, शक्ति की उपासना पर विश्वास दोनों का है। जिन लोगों ने संसार की भरण-पोषण करने वाली वैष्णवी शक्ति को मुख्य रूप से उपास्य माना है, उन्होंने उस आदिभूता शक्ति का नाम 'महालक्ष्मी' स्वीकार किया है। दीपावली के पुण्य-पर्व पर इसी आद्याशक्ति की पूजा होती है। देश के पूर्वी हिस्सों में इस दिन महाकाली की पूजा होती है। दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। केवल रुचि और संस्कार के अनुसार आद्याशक्ति के विशिष्ट रूपों पर बल दिया जाता है। पूजा आद्याशक्ति की ही होती है। मुझे यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि देश के किसी कोने में इस दिन महासरस्वती की पूजा होती है या नहीं। होती हो तो कुछ अचरज की बात नहीं होगी। दीपावली का पर्व आद्याशक्ति के विभिन्न रूपों के स्मरण का दिन है। यह सारा दृश्यमान जगत-ज्ञान, इच्छा और क्रिया के रूप में त्रिपुटीकृत है। ब्रह्म की मूल शक्ति में इन तीनों का सूक्ष्म रूप में अवस्थान होगा। त्रिपुटीकृत जगत की मूल कारणभूता इस शक्ति को ' त्रिपुरा' भी कहा जाता है। आरम्भ में जिसे महालक्ष्मी कहा गया है उससे यह अभिन्न है। ज्ञान रूप में अभिव्यक्त होने पर यह सत्वगुणप्रधान सरस्वती के रूप में, इच्छा-रूप में रजोगुण-प्रधान लक्ष्मी के रूप में और क्रियारूप में तमोगुण-प्रधान काली के रूप में उपास्य होती है। लक्ष्मी इच्छा रूप में अभिव्यक्त होती है। जो साधक लक्ष्मी-रूप में आद्याशक्ति की उपासना करते हैं, उनके चित्त में इच्छाशक्ति की प्रधानता होती है, पर बाकी दो तत्व ज्ञान और क्रिया भी उसमें सहायक होते हैं। इसीलिए लक्ष्मी की उपासना 'ज्ञानपूर्वा क्रियापरा' होती है, अर्थात वह ज्ञान द्वारा चलित और क्रिया द्वारा अनुगमित इच्छा-शक्ति की उपासना होती है। 'ज्ञानपूर्वा क्रियापरा' का मतलब है कि यद्यपि इच्छाशक्ति ही मुख्यतः उपास्य है, पर पहले ज्ञान की सहयता और बाद में क्रिया का समर्थन इसमें आवश्यक है। यदि उलटा हो जाये, अर्थात इच्छा-शक्ति की उपासना क्रियापूर्वा और ज्ञानपरा हो जाए, तो उपासना का रूप बदल जाता है। पहली अवस्था में उपास्या लक्ष्मी समस्त जगत्

के उपकार के लिये होती है। उस लक्ष्मी का वाहन गरुण होता है। गरुण शक्ति, वेग और सेवावृत्ति का प्रतीक है। दूसरी अवस्था में उसका वाहन उल्लू होता है। उल्लू स्वार्थ, अन्धकारप्रियता और विच्छिन्नता का प्रतीक है। लक्ष्मी तभी उपास्य होकर भक्त को ठीक-ठीक कृतकृत्य करती है जब उसके चित्त में सबके कल्याण की कामना रहती है। यदि केवल अपना स्वार्थ ही साधक के चित्त में प्रधान हो, तो वह उलूक-वाहिनी शक्ति की ही कृपा पा सकता है। फिर तो वह तमोगुण का शिकार हो जाता है। उसकी उपासना लोककल्याण मार्ग से विच्छिन्न होकर बन्ध्या हो जाती है। दीपावली प्रकाश का पर्व है। इस दिन जिस लक्ष्मी की पूजा होती है, वह गरुण-वाहिनी है - शक्ति, सेवा और गतिशीलता उसके प्रमुख गुण हैं। प्रकाश और अन्धकार का नियत विरोध है। अमावस्या की रात को प्रयत्नपूर्वक लाख-लाख प्रदीपों को जलाकर हम लख्मी के उलूकवाहिनी रूप की नहीं, गरुणवाहिनी रूप की उपासना करते हैं। हम अन्धकार का, समाज में कटकर रहने का, स्वार्थपरता का प्रयत्नपूर्वक प्रात्याख्यान करते हैं और प्रकाश का, सामाजिकता का और सेवावृत्ति का आव्हान करते हैं। हमें भूलना न चाहिए कि यह उपासना ज्ञान द्वारा चलित और क्रिया द्वारा अनुगमित होकर ही सार्थक होती है। सर्वहया दया महालक्ष्मीस्त्रीगुणा परमेश्वरी। लक्ष्यालक्षस्वरूपा या व्याप्त कुत्सनं व्यवस्थिता।।

अँधियार ढल कर ही रहेगा

गोपाल दास नीरज

आँधियाँ चाहें उठाओ,
बिजलियाँ चाहें गिराओ,
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

रोशनी पूँजी नहीं है, जो तिजोरी में समाये,
वह खिलौना भी न, जिसका दाम हर गाहक लगाये,
वह पसीने की हँसी है, वह शहीदों की उमर है,
जो नया सूरज उगाये जब तड़पकर तिलमिलाये,
उग रही लौ को न टोको,
ज्योति के रथ को न रोको,

यह सुबह का दूत हर तम को निगलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

दीप कैसा हो, कहीं हो, सूर्य का अवतार है वह,
धूप में कुछ भी न, तम में किन्तु पहरेदार है वह,
दूर से तो एक ही बस फूँक का वह है तमाशा,
देह से छू जाय तो फिर विप्लवी अंगार है वह,
व्यर्थ है दीवार गढ़ना,
लाख लाख किवाड़ जड़ना,
मृतिका के हाथ में अमरित मचलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

है जवानी तो हवा हर एक घूँघट खोलती है,
टोक दो तो आँधियों की बोलियों में बोलती है,
वह नहीं कानून जाने, वह नहीं प्रतिबन्ध माने,
वह पहाड़ों पर बदलियों सी उछलती डोलती है,
जाल चाँदी का लपेटो,
खून का सौदा समेटो,
आदमी हर क़ैद से बाहर निकलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

वक्त को जिसने नहीं समझा उसे मिटना पड़ा है,
बच गया तलवार से तो फूल से कटना पड़ा है,
क्यों न कितनी ही बड़ी हो, क्यों न कितनी ही कठिन हो,
हर नदी की राह से चट्टान को हटना पड़ा है,
उस सुबह से सन्धि कर लो,
हर किरन की माँग भर लो,
है जगा इन्सान तो मौसम बदलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

पतझड़ के बाद

पद्मा मिश्रा

पोस्टमैन बड़ी देर से दरवाजे की घंटी बजा रहा था. शायद रजनी कहीं व्यस्त थी. घंटी की आवाज सुन दौड़ कर दरवाजा खोला. कोई चिट्ठी थी - गुलाबी लिफाफे में. धडकते दिल से लिफाफा खोला, पता नहीं किसकी है ?..आज-कल ई मेल के ज़माने में किसने लिखी चिट्ठी ? जाने-पहचाने.....स्मृतियों की धुंध में लिपटे, मोतियों से अक्षर....अदृश्य दीवारें हटने लगीं....एक चेहरा उभरने लगा यादों में---"सुमन? वह गोल मटोल भोला भाला सांवला सौन्दर्य मानो मुस्करा उठा -- "कैसी हो बुआ? मुझे भुला दिया न? यादों के ख़जाने में दफ़न मेरी यादों को मुक्त करके मुस्कराओ ना बुआ!....आ रही हूँ आपके पास, अपनी माँ के पास. २५ को मेरी शादी है - आपके ही घर से, समय कम है बस, तैयारियों में व्यस्त हो जाओ....मिलूँगी जल्दी ही "

"हाँ हाँ....यह अपनी सुमन ही है, ऐसी ही बातें करती थी हमेशा....पगली."

रजनी भौंचक थी, हँसे या रोये? जिसके खो जाने पर पल पल उसकी यादों में रातों रोई, वह अचानक यूँ मिल जाएगी, सोचा न था. आँखों से बहते आँसू उस पत्र को भिंगोते रहे. वह चुपचाप खड़ी सोच रही थी. अचानक कंधे पर विपुल का हाथ महसूस कर चौंकी, "किसकी चिट्ठी है रजनी ?"....उसने चुपचाप पत्र बढ़ा दिया - 'वह भी चकरा कर बैठ गए पलंग पर...."आज इतने वर्षों के बाद !..कहाँ थी वह, किसके पास थी?...."पर मन में उमड़ते घुमड़ते इन सवालों का जवाब सुमन ही दे सकती थी. रजनी ने आँसू पोंछ विपुल का हाथ थाम कहा, "चलिए, समय कम है, और शादी की ढेर सारी तैयारियाँ करनी हैं, गहने-कपडे, बरातियों का स्वागत, पता नहीं क्या क्या!"....रजनी का गला रुँध गया था....यादें उसके आस पास सावन के बादलों की तरह उमड़ घुमड़ रही थीं....वह दिन जब ट्रेन दुर्घटना में मृत उसके भाई भाभी की एक मात्र संतान सुमन को माँ ने उसकी झोली में डाल कहा था, "अब तू ही इसकी माँ है सँभल बेटा"...संतान सुख से वंचित रजनी की आँखें बरस उठी थीं. सुमन को कलेजे से लगाये ससुराल लौटी थी रजनी....विपुल ने गले से लगा लिया था उस नन्हीं सी जान को, बस उसके सास ससुर ने जल्दी उसे नहीं अपनाया. पुरानी रुढियों में जकड़े उनके विचारों में इतनी जल्दी बदलाव नहीं आ सकता था. अपना वंश, अपने खून की चाहत वे कैसे भुला देते! यह बात वे दोनों अच्छी तरह समझ गए थे. पर सुमन के आने से उनका सपना जैसे साकार हो गया था, क्योंकि वे समझ रहे थे कि प्यार में बड़ी ताकत होती है. उनके पूरे घर आँगन में सुमन की किलकारियाँ गूँजी. नन्हे क़दमों की आहट से मन का कोना कोना महक उठा. और जब पहली बार माँ कहा सुमन ने तो वह निहाल हो उठी थी. पर न जाने कब बड़ी होती सुमन को उसकी सासु माँ ने यह अहसास करा ही दिया कि वह उसकी सगी माँ नहीं बुआ है, पर यह बात उसके बाल मन ने कभी स्वीकार नहीं की थी, वह

चुपके से कभी कभी उसे 'माँ' पुकार उठती. कब सुमन बड़ी हुई, कब स्कूल गई, और कब डांस प्रतियोगिता में भाग लेकर लौटते समय....वह....क्रूर.... भयानक हादसा....उसे याद कर रजनी काँप उठी....सहेलियों संग हँसती खेलती सुमन जब उनसे अलग होकर गली के मोड़ पर पहुँची तो अचानक शराब पिए झूमते-झामते कुछ सिरफिरों की टोली ने उसे घेर लिया. वह अकेली डर कर चीखती-चिल्लाती अपना बचाव करती रही, उन भेड़ियों से. वे बलिष्ठ थे और उस पर भारी पड़ रहे थे. वह छोटी सी बच्ची सिंहनी की तरह उनका सामना करती रही. अपना भारी बस्ता पूरी ताकत से घुमाती रही. दांतों से काटा. अंततः एक बड़ा पत्थर उठाकर उनमें से एक के सिर पर दे मारा और भाग आई थी घर. परन्तु उस बारह वर्षीया किशोरी के अंतर्मन में उस हादसे ने गहरी जड़ें जमा ली थीं. रजनी की गोद में रोते-सिसकते रात भर काँपती रही सुमन. ईश्वर ने उसके साहस को नमन कर उसे सुरक्षित बचा तो लिया था, पर उसके कोमल मन ने जो घाव खाए थे, वे नहीं भर पा रहे थे. उसकी सासु माँ, कुछ भी अघटित न होने पर भी वे उसे ही दोषी मान रही थी....कितने लांछन....कितने आरोप....वह बच्ची थी, क्या जानती थी दुनिया के प्रपंच की बातें. वह घुट रही थी मन ही मन. कई रातों तक सोई नहीं थी. न कुछ खाती न पीती. वह चंचल मैना चहकना ही भूल गई थी. सासु माँ उसे झूठी, मक्कार न जाने क्या क्या कहतीं रहतीं और वह चुपचाप अपनी नम आँखों से उन्हें देखती रहती. विपुल भी माँ से कुछ नहीं बोल पाते थे कि बूढी हैं, पुरानी विचारधारा की हैं, एक दिन सब ठीक हो जायेगा. पर वह दिन कभी नहीं आया .और एक रात घर से कहीं चली गई सुमन.

रजनी तो जैसे पागल हो गई थी. विपुल रात भर खोजते रहे उसे. पर सुमन तो जैसे पटल में समाँ गई थी. रजनी के जीवन की शून्यता पूर्ण नहीं हो पाई थी. वह उसके भाई की भी एकमात्र संतान, उनकी आख़िरी निशानी थी. उसकी ममता एक बार पुनः पराजित हो गई थी. बाद के वर्षों में सासु माँ नहीं रहीं, फिर ससुर जी, और वे दोनों अकेले रह गए थे. धीरे-धीरे अकेलेपन की आदत पड़ गई थी और सुमन की यादें धुंध में कहीं खो गईं.

गैस पर चाय उबलने लगी थी. गर्म चाय से उसका हाथ जलते ही वह घबरा कर अपनी तन्द्रा से लौट आई. आँसू पोंछ शीघ्रता से कार्य निपटाया. शाम को खरीददारी की लिस्ट तैयार करने बैठ गई. अचानक रजनी एक उमंग, उछाह से भर उठी, उसकी बेटी की शादी है....कौन सा रंग उस पर फबेगा?....कैसे गहने ख़रीदे?....कैसी दिखती होगी वह?...क्या उस पर गुलाबी रंग अब भी खिलता होगा? वह मुस्करा उठी .

विवाह से ठीक दो दिन पहले सुमन आ गई थी. सुबह सुबह बड़ी सी काले रंग की गाड़ी का दरवाज़ा ड्राइवर ने सैल्यूट देकर खोला. वह धडकते दिल से देख रही थी, एक सांवली-सलोनी युवती, कन्धों तक लहराते बाल, हिरनी-सी काली आँखें, गुलाबी साड़ी में....हाँ हाँ, यही है उसकी सुमन, वही तो थी बिलकुल वनदेवी की तरह खुबसूरत ....उसने दौड़कर रजनी के चरण स्पर्श किये और गले लग

गई, "कैसी हो बुआ?" उसकी भी आँखें उठी थीं फिर विपुल को प्रणाम कर पूछा, पापा कैसे हैं?....विपुल ने बाँहें फैला बेटी को थाम लिया था. उसके पीछे शालीन, सज्जन से वृद्ध दम्पति भी थे. मुस्कराते हुए रजनी और विपुल ने उनके पाँव छुए और स्वागत किया.

रात को गरम काफी पीते हुए सुमन ने बताया कि वह भाग कर किस यात्रा के लिए, कहाँ बिना सोचे-समझे घर से बाहर निकल आई थी. "दादी माँ ने मुझे धमकाया था कि भाग जा यहाँ से वर्ना वो बुरा हाल करुँगी तेरा. उनकी बातें सुन-सुन कर पड़ोस वाली मेरी सहेलियाँ मुझसे बात नहीं करती थीं और उनकी माँ मेरे साथ उन्हें खेलने से मना करने लगी थीं. मै डर गई थी बुआ, क्या करती? आप लोगों को बताने पर भी दादी नाराज़ होती. कहाँ जाऊँगी, नहीं जानती थी. बस घर से निकल पड़ी थी. रास्ता अँधेरा था और मेरे पीछे कुत्ते भौंकते हुए दौड़ रहे थे. मै उनसे बचने के लिए दौडती-दौडती रेलवे स्टेशन तक पहुँच गई. सन्नाटा था. मै एक कोयले वाली मालगाड़ी में छुप गई. रात भर वहीं बैठी रोती रही थी. सुबह कोयले की ढुलाई करने वाले मज़दूरों ने मुझे देखा तो भौंचक रह गए. उन्हें देख मैं जोर-जोर से रोने लगी थी और वे सब मुझे चुप कराते रहे और मुझे अपने साथ ले गए. खाना खिलाया. जब मेरा नाम पता पूछा तो भयवश मै कुछ नहीं बोल पाई. मै वापस नहीं आना चाहती थी घर. परिवार से दूर रोजी-रोटी कमाने आये उन गरीब मज़दूरों ने मुझे बेटी की तरह प्यार-दुलार दिया. वे दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूर थे. कोयला ढोने, रेलवे लाइने बिछाने का काम करने वाले. मै उनके साथ बहुत दिनों तक रही पर जब उनका काम ख़त्म हो गया तब उन्होंने मुझसे फिर पूछा, "बेटा, अपने घर जाओगी? पता मालूम हो तो हमें बताओ, हम तुम्हें वहाँ पहुँचा देंगे." पर मेरी चुप्पी से वे विवश थे. मै तो केवल इलाहाबाद का नाम जानती थी, पर घर कहाँ है याद नहीं था. उन भोले-भाले मजदूरों ने मुझे पुलिस के पास नहीं दिया कि वे पता नहीं मेरे साथ क्या सुलूक करेंगे या कहीं उन्हें ही लड़की को अगवा करने के जुर्म में न फँसा लें? उन्होंने मुझे पड़ोस में रहने वाली दादी माँ रूपा वर्मा के पास भेज दिया. उनके यहाँ कुछ लड़कियाँ किराये में रह कर पढ़ती थीं. उनके पति फौज़ में आसाम में कार्यरत थे अतः उन्होंने मेरे मासूम बचपन को ध्यान में रख प्यार से मुझे भी अपना लिया था. वे निसंतान थीं. मुझे अपनी नातिन मानकर पढाया लिखाया. उनके प्यार- दुलार से मैं बिखर गई थी और टुकड़ों में अपनी व्यथा उन्हें कह सुनाई. उन्होंने मेरा हौसला बढाया, कहा "कोई बात नहीं बेटा, एक दिन योग्य और सक्षम बन कर वापस लौटना. आज मै प्रशासनिक सेवा में हूँ माँ. राजेश मेरा बैचमेट है और दादी माँ का रिश्तेदार भी. मेरा विवाह मेरे ही सहकर्मी से और मेरी पसंद से हो रहा है. २५तारीख को वे बारात लेकर आयेंगे. मेरी किस्मत अच्छी थी बुआ कि मुझे अच्छे लोग मिले पर मैंने अपने जैसी हजारों लड़कियों को भटकते देखा है. अब मैं उनके लिए कुछ बड़ा काम करुँगी. मैं उनकी पीड़ा समझती हूँ. अगर माँ बाप अपने बच्चों को समझते तो इतनी लड़कियाँ आज सड़कों पर नहीं भटकतीं, न बुआ? इस दौर में मैंने यह भी सीखा बुआ माँ कि सभी पुलिस वाले भी अविश्वसनीय नहीं होते. मुझे उन लोगों ने

बहुत प्यार व सम्मान दिया है. आप लोगों को खोजने की बहुत कोशिश की पर आप नहीं मिले थे. फिर जब आपका पता चला तो आपसे मिलवाने में एक पल की देरी नहीं की....कि कन्यादान का हक़ तो आपका ही है. "फिर प्यार से रजनी की गोद में सिमट बिलख उठी सुमन "मुझे माफ़ कर दो बुआ-माँ."

सुमन की बातों पर अविश्वास करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था, उसकी सच्चाई उसके आँसू बयान कर रहे थे. रजनी को अपनी बेटी पर पूरा विश्वास था. काश वह किसी की परवाह नहीं करती और अपनी बेटी के हक़ के लिए माँ से, समाज से लड़ जाती तो ऐसा नहीं होता. रजनी सोच रही थी, "विकृत रुढियों और अपरिपक्व सोच वाली एक बुजुर्ग महिला ने उसे सड़कों पर भटकने के लिए विवश किया तो एक परिपक्व मानसिकता, सुलझे सोच वाली रूपा जी ने उसे ज़िन्दगी दी. रजनी भाव विह्वल हो उठी. उसने वहीं बैठी रूपा जी के आगे दोनों हाथ जोड़ दिए. उन्होंने रजनी को सहारा दिया. उन्होंने कहा, "सारा सवाल तो इसी सोच का है, हमें समाज के साथ बदलना ही होगा. हम अपने बच्चों पर अविश्वास करके ही उन्हें मौत की ओर धकेलते हैं."

रोती हुई सुमन को बाँहों में समेटे रजनी बहुत खुश थी. सोच रही थी, "आज वर्षों बाद बसंत लौट आया है, जीवन में अनेक पतझड़ के थपेड़े सहने के बाद लौट आया है उसका बसंत, अब इसकी कोमल पंखुरियों को मुरझाने से बचाना ही होगा.....!"

किसी भटके मुसाफ़िर का सहारा हूँ

रमेश जोशी

किसी भटके मुसाफ़िर का सहारा हूँ
अँधेरी रात का तनहा सितारा हूँ.

मुझे हैरान नज़रों से न देखो
तुम्हारे वास्ते हूँ मैं तुम्हारा हूँ.

हवा हूँ, धूप हूँ, खुशबू हूँ मैं तो
मुझे समझो मैं कुदरत का इशारा हूँ.

ख़ुदा को, नाख़ुदा को मत पुकारो
कोई तूफ़ाँ नहीं, मैं तो किनारा हूँ.

तुम्हारे बिन मेरा मतलब न कोई
नज़र का मुंतज़र हूँ, मैं नज़ारा हूँ.

अनबरसी बदली

बाल स्वरूप राही

वह विदा-क्षणः
जब तुम्हारे लोचनों के साँवले आकाश में
एक उफनती हुई बदली घिरी।
घिर गई लेकिन बरस पाई नहीं
क्योंकि थी वह क़ैद सामाजिक नियमों के पाश में!
मात्र बिजली एक कौंधी थी तुम्हारी आँख में
यह अर्थ लेकरः
'अब कभी मिलना न होगा।
अब कभी मिलना न होगा
मैं विवश हूँ प्राण!'
मैं तभी से अनभिगोया वक्ष से
मरुभूमि-सा तपता रहा हूँ
और मैं करता रहा हूँ इंतज़ार
उस दिवस का
जब कि हर बदली दहकती आग में ढल जाएगी
और जिस में हर विवशता मोम-सी गल जाएगी!

चिन्दी चिन्दी होती हिन्दी, हम क्या करें?

डॉ. अमरनाथ

ज्ञान के सबसे बड़े सर्च इंजन विकीपीडिया ने अपने नए सर्वेक्षण नें दुनिया की सौ भाषाओं की सूची जारी की है. उसमें हिन्दी को चौथा स्थान दिया है. अब तक हिन्दी को दूसरे स्थान पर रखा जाता था. पहले स्थान पर चीनी थी. यह परिवर्तन इसलिए हुआ की सौ भाषाओं की इस सूची में भोजपुरी, अवधी, मैथिली, मगही, हरियाणवी और छत्तीसगढ़ी को स्वतंत्र भाषा का दर्जा दिया गया है. हिन्दी को खण्ड-खण्ड करके देखने की यह अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति है. आज भी यदि हम इनके सामने अंकित संख्याओं को हिन्दी बोलने वालों की संख्या में जोड़ दें तो फिर हिन्दी दूसरे स्थान पर पहुँच जाएगी. किन्तु यदि उक्त भाषाओं के अलावा राजस्थानी, ब्रजी, कुमायूनी-गढ़वाली, अंगिका, बुंदेली जैसी बोलियों को भी स्वतंत्र भाषाओं के रूप में गिन लें तो निश्चित रूप से हिन्दी सातवें-आठवें स्थान पर पहुँच जाएगी और जिस तरह से हिन्दी की उक्त बोलियों द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग जोरों से की जा रही है यह परिघटना आगे के कुछ ही वर्षों में यथार्थ बन जाएगी.

इस बीच विगत सितंबर के अंतिम सप्ताह में जोहान्सबर्ग में नवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ. मुझे भी उसमें शिरकत करने का अवसर मिला. पाँच सौ से अधिक हिन्दी के शुभचिन्तक विद्वान और लेखक वहाँ जुटे. अनेक मुद्दे चर्चा के लिए रखे गए थे, किन्तु हिन्दी की अस्मिता से जुड़े सबसे ज्वलंत इस मुद्दे पर कोई चर्चा ही नहीं हुई. कायदे से एक पूरा सत्र इस पर होना चाहिए था. मैने खुद विदेश मंत्रालय के अधिकारियों को समय रहते इस आशय का पत्र मेजा था, फोन पर बात की थी. सम्मेलन से जुड़े कई विद्वान मित्रों से भी चर्चा की थी. किन्तु हिन्दी के इस महाकुंभ से भी मुझे निराशा ही हाथ लगी.

संसद का आगामी सत्र हमारी राजभाषा हिन्दी के लिए सुनामी का कहर बनकर आएगा और उसे चन्द मिनटों मे टुकड़े-टुकड़े करके छिन्न-भिन्न कर देगा। चन्द मिनटों में इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि गृहमंत्री पी. चिदंबरम ने विगत १७ मई २०१२ को लोक सभा के सांसदों को आश्वासन दे रखा था कि आगामी मानसून सत्र में भोजपुरी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने वाला बिल संसद में पेश होगा। यदि वह पूरा सत्र कोयला घोटाले की भेट न चढ़ गया होता तो अब तक हिन्दी के खूबसूरत घर का एक हिस्सा और बँट गया होता. अब भी यदि समय रहते हमने इस बिल के पीछे छिपी साम्राज्यवाद और उसके दलालों की साजिश का पर्दाफाश नहीं किया तो हमें उम्मीद है कि आगामी सत्र में यह बिल बिना किसी बहस के कुछ मिनटों में ही पारित हो जाएगा और हिन्दी टुकड़े-टुकड़े होकर विखर जाएगी। इस देश के गृहमंत्री की जबान से इस देश की राजभाषा हिन्दी के शब्द सुनने के लिए जो कान तरसते रह गए उसी गृहमंत्री ने ***हम रउआ सबके भावना समझतानीं*** जैसा भोजपुरी का वाक्य बोलकर भोजपुरी भाषियों का दिल जीत लिया। सच है भोजपुरी भाषी आज भी दिल से ही काम लेते हैं, दिमाग से नहीं, वर्ना, अपनी अप्रतिम ऐतिहासिक विरासत, सांस्कृतिक समृद्धि, श्रम की क्षमता, उर्वर भूमि और गंगा यमुना जैसी जीवनदायिनी नदियों के रहते हुए यह हिन्दी भाषी क्षेत्र आज भी सबसे पिछड़ा क्यों रहता ? यहाँ के लोगों को तो अपने हित-अनहित की भी समझ नहीं है। वैश्वीकरण के इस युग में जहाँ दुनिया के देशों की सरहदें टूट रही हैं, टुकड़े टुकड़े होकर विखरना हिन्दी भाषियों की नियति बन चुकी है।

सच है, जातीय चेतना जहाँ सजग और मजबूत नहीं होती वहाँ वह अपने समाज को विपथित भी करती हैं। समय-समय पर उसके भीतर विखंडनवादी शक्तियाँ सर उठाती रहती हैं। विखंडन व्यापक साम्राज्यवादी षड्यंत्र का ही एक हिस्सा है। दुर्भाग्य से हिन्दी जाति की जातीय चेतना मजबूत नहीं है और इसीलिए वह लगातार टूट रही है।

अस्मिताओं की राजनीति आज के युग का एक प्रमुख साम्राज्यवादी एजेंडा है। साम्राज्यवाद यही सिखाता है कि *थिंक ग्लोबली एक्ट लोकली*। जब संविधान बना तो मात्र १३ भाषाएँ आठवीं अनुसूची में शामिल थीं। फिर १४, १८ और अब २२ हो चुकी हैं। अकारण नहीं है कि जहाँ एक ओर दुनिया ग्लोबल हो रही है तो दूसरी ओर हमारी भाषाएँ यानी अस्मिताएँ टूट रही हैं और इसे अस्मिताओं के उभार के रूप में देखा जा रहा है। हमारी दृष्टि में ही दोष है। इस दुनिया को कुछ दिन पहले जिस प्रायोजित विचारधारा के लोगों द्वारा *ग्लोबल विलेज* कहा गया था उसी विचारधारा के लोगों द्वारा हमारी भाषाओं और जातीयताओं को टुकड़ो-टुकड़ो में बाँट करके कमजोर किया जा रहा है।

भोजपुरी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग समय-समय पर संसद में होती रही है। श्री प्रभुनाथ सिंह, रघुवंश प्रसाद सिंह, संजय निरूपम, अली अनवर अंसारी, योगी आदित्य नाथ जैसे सांसदों ने समय-समय पर यह मुद्दा उठाया है। मामला सिर्फ भोजपुरी को संवैधानिक मान्यता देने का नहीं है। मध्यप्रदेश से अलग होने के बाद छत्तीसगढ़ ने २८ नवंबर २००७ को अपने राज्य की राजभाषा छत्तीसगढ़ी घोषित किया और विधान सभा में प्रस्ताव पारित करके उसे संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग की। यही स्थिति राजस्थानी की भी है। हकीकत यह है कि जिस राजस्थानी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग जोरों से की जा रही है उस नाम की कोई भाषा वजूद में है ही नहीं। राजस्थान की ७४ में से सिर्फ ९ (ब्रजी, हाड़ौती, बागड़ी, ढूंढाड़ी, मेवाड़ी, मेवाती, मारवाड़ी, मालवी, शेखावटी) बोलियों को राजस्थानी नाम देकर संवैधानिक दर्जा देने की माँग की जा रही है। बाकी बोलियों पर चुप्पी क्यों ? इसी तरह छत्तीसगढ़ में ९४ बोलियाँ हैं जिनमें *सरगुजिया* और *हालवी* जैसी समृद्ध बोलियाँ भी हैं। छत्तीसगढ़ी को संवैधानिक दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ने वालों को इन छोटी-छोटी उप बोलियाँ बोलने वालों के अधिकारों की चिन्ता क्यों नहीं है? पिछले दिनों केन्द्रीय गृहराज्य मंत्री नवीन जिंदल ने लोक सभा में एक चर्चा को दौरान कुमांयूनी-गढ़वाली को संवैधानिक दर्जा देने का आश्वासन दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा कि यदि हरियाणा सरकार हरियाणवी के लिए कोई संस्तुति भेजती है तो उसपर भी विचार किया जाएगा। मैथिली तो पहले ही शामिल हो चुकी है। फिर अवधी और ब्रजी ने कौन सा अपराध किया है कि उन्हें आठवीं अनुसूची में जगह न दी जाय जबकि उनके पास *रामचरितमानस* और *पद्मावत* जैसे ग्रंथ है? हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूरा मध्य काल तो ब्रज भाषा में ही लिखा गया। इसी के भीतर वह कालखण्ड भी है जिसे हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग (भक्ति काल) कहते हैं।

भागलपुर विश्वविद्यालय में अंगिका में भी एम.ए. की पढ़ाई होती है। मैने वहाँ के एक शिक्षक से पूछा कि अंगिका में एम.ए. की पढ़ाई करने वालों का भविष्य क्या है ? उन्होंने बताया कि उन्हें सिर्फ डिग्री से मतलब होता है विषय से नहीं। एम.ए. की डिग्री मिल जाने से एल.टी. ग्रेड के शिक्षक को पी.जी. (प्रवक्ता) का वेतनमान मिलने लगता है। वैसे नियमित कक्षाएँ कम ही चलती हैं। जिन्हें डिग्री की लालसा होती है वे ही प्रवेश लेते हैं और अमूमन सिर्फ परीक्षा देने आते हैं। जिस शिक्षक से मैने प्रश्न किया उनका भी एक उपन्यास कोर्स में लगा है जिसे इसी उद्देश्य से उन्होंने अंगिका में लिखा है मगर हैं वे हिन्दी के प्रोफेसर। वे रोटी तो हिन्दी की खाते हैं किन्तु अंगिका को संवैधानिक दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ रहे हैं जिसके पीछे उनका यही स्वार्थ है। अंगिका के लोग अपने पड़ोसी मैथिली वालों पर आरोप लगाते हैं कि उन लोगों ने जिस साहित्य को अपना बताकर पेश किया है और संवैधानिक दर्जा

हासिल किया है उसका बहुत सा हिस्सा वस्तुत: अंगिका का है। इस तरह पड़ोस की मैथिली ने उनके साथ धोखा किया है। यानी, बोलियों के आपसी अंतर्विरोध। अस्मिताओं की वकालत करने वालों के पास इसका क्या जवाब है?

संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हिन्दुस्तान की कौन सी भाषा है जिसमें बोलियाँ नहीं हैं? गुजराती में सौराष्ट्री, गामड़िया, खाकी, आदि, असमिया में क्षखा, मयांग आदि, ओड़िया में संभलपुरी, मुघलबंक्षी आदि, बंगला में बारिक, भटियारी, चिरमार, मलपहाड़िया, सामरिया, सराकी, सिरिपुरिया आदि, मराठी में गवड़ी, कसारगोड़, कोस्ती, नागपुरी, कुड़ाली आदि। इनमें तो कहीं भी अलग होने का आन्दोलन सुनायी नहीं दे रहा है। बंगला तक में नहीं, जहाँ अलग देश है। मैं बंगला में लिखना पढ़ना जानता हूँ किन्तु ढाका की बंगला समझने में बड़ी असुविधा होती है।

अस्मिताओं की राजनीति करने वाले कौन लोग हैं? कुछ गिने–चुने नेता, कुछ अभिनेता और कुछ स्वनामधन्य बोलियों के साहित्यकार। नेता जिन्हें स्थानीय जनता से वोट चाहिए। उन्हें पता होता है कि किस तरह अपनी भाषा और संस्कृति की भावनाओं में बहाकर गाँव की सीधी-सादी जनता का मूल्यवान वोट हासिल किया जा सकता है।

इसी तरह भोजपुरी का अभिनेता रवि किसन यदि भोजपुरी को संवैधानिक मान्यता दिलाने के लिए संसद के सामने धरना देने की धमकी देता है तो उसका निहितार्थ समझ में आता है क्योंकि, एक बार मान्यता मिल जाने के बाद उन जैसे कलाकारों और उनकी फिल्मों को सरकारी खजाने से भरपूर धन मिलने लगेगा। शत्रुघ्न सिन्हा ने लोकसभा में यह माँग उठाते हुए दलील दिया था कि इससे भोजपुरी फिल्मों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्यता और वैधानिक दर्जा दिलाने में काफी मदद मिलेगी।

बोलियों को संवैधानिक मान्यता दिलाने में वे साहित्यकार सबसे आगे हैं जिन्हें हिन्दी जैसी समृद्ध भाषा में पुरस्कृत और सम्मानित होने की उम्मीद टूट चुकी है। हमारे कुछ मित्र तो इन्हीं के बलपर हर साल दुनिया की सैर करते हैं और करोड़ो का वारा-न्यारा करते हैं। स्मरणीय है कि नागार्जुन को साहित्य अकादमी पुरस्कार उनकी मैथिली कृति पर मिला था किसी हिन्दी कृति पर नहीं। बुनियादी सवाल यह है कि आम जनता को इससे क्या लाभ होगा?

एक ओर सैम पित्रोदा द्वारा प्रस्तावित ज्ञान आयोग की रिपोर्ट जिसमें इस देश के ऊपर के उच्च मध्य वर्ग को अँग्रेज बनाने की योजना है और दूसरी ओर गरीब गँवार जनता को उसी तरह कूप मंडूक बनाए रखने की साजिश। इस साजिश में कारपोरेट दुनिया की क्या और कितनी भूमिका है – यह शोध का विषय है। मुझे उम्मीद है कि निष्कर्ष चौंकाने वाले होंगे।

वस्तुत: साम्राज्यवाद की साजिश हिन्दी की शक्ति को खण्ड-खण्ड करने की है क्योंकि बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिन्दी, दुनिया की सबसे बड़ी दूसरे नंबर की भाषा है। इस देश में अँग्रेजी के सामने सबसे बड़ी चुनौती हिन्दी ही है। इसलिए हिन्दी को कमजोर करके इस देश की सांस्कृतिक अस्मिता को, इस देश की रीढ़ को आसानी से तोड़ा जा सकता है। अस्मिताओं की राजनीति के पीछे साम्राज्यवाद की यही साजिश है।

जो लोग बोलियो की वकालत करते हुए अस्मिताओं के उभार को जायज ठहरा रहे हैं वे अपने बच्चों को अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ा रहे हैं, खुद व्यवस्था से साँठ-गाँठ करके उसकी मलाई खा रहे हैं और अपने आस-पास की जनता को जाहिल और गँवार बनाए रखना चाहते हैं ताकि भविष्य में भी उनपर अपना वर्चस्व कायम रहे। जिस देश में खुद राजभाषा हिन्दी अब तक ज्ञान की भाषा न बन सकी

हो वहाँ भोजपुरी, राजस्थानी, और छत्तीसगढ़ी के माध्यम से बच्चों को शिक्षा देकर वे उन्हें क्या बनाना चाहते है? जिस भोजपुरी, राजस्थानी या छत्तीसगढ़ी का कोई मानक रूप तक तय नहीं है, जिसके पास गद्य तक विकसित नहीं हो सका है उस भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कराकर उसमें मेडिकल और इंजीनियरी की पढ़ाई की उम्मीद करने के पीछे की धूर्त मानसिकता को आसानी से समझा जा सकता है।

अगर बोलियों और उसके साहित्य को बचाने की सचमुच चिन्ता है तो उसके साहित्य को पाठ्यक्रमों में शामिल कीजिए, उनमें फिल्में बनाइए, उनका मानकीकरण कीजिए। उन्हें आठवीं अनुसूची में शामिल करके हिन्दी से अलग कर देना और उसके समानान्तर खड़ा कर देना तो उसे और हिन्दी, दोनो को कमजोर बनाना है और उन्हें आपस में लड़ाना है।

मित्रो, मैं बंगाल का हूँ। बंगाल की दुर्गा पूजा मशहूर है। मैं जब भी हिन्दी के बारे में सोचता हूँ तो मुझे दुर्गा का मिथक याद आता है। दुर्गा बनी कैसे? महिषासुर से त्रस्त सभी देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए थे। *"अतुलं तत्र तत्तेज: सर्वदेवशरीरजम्। एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।"* अर्थात् सभी देवताओं के शरीर से प्रक़ट हुए उस तेज की कहीं तुलना नहीं थी। एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनो लोकों में व्याप्त हो गया । तब जाकर महिषासुर का बध हो सका।

हिन्दी भी ठीक दुर्गा की तरह है। जैसे सारे देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए और दुर्गा बनी वैसे ही सारी बोलियों के समुच्चय का नाम हिन्दी है। यदि सभी देवता अपने-अपने तेज वापस ले लें तो दुर्गा खत्म हो जाएगी, वैसे ही यदि सारी बोलियाँ अलग हो जायँ तो हिन्दी के पास बचेगा क्या? हिन्दी का अपना क्षेत्र कितना है? वह दिल्ली और मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली कौरवी से विकसित हुई है। हम हिन्दी साहित्य के इतिहास में चंदबरदायी और मीरा को पढ़ते है जो राजस्थानी के हैं, सूर को पढ़ते हैं जो ब्रजी के हैं, तुलसी और जायसी को पढ़ते हैं जो अवधी के हैं, कबीर को पढ़ते हैं जो भोजपुरी के हैं और विद्यापति को पढ़ते है जो मैथिली के हैं। इन सबको हटा देने पर हिन्दी साहित्य में बचेगा क्या?

अपने पड़ोसी नेपाल में सन् २००१ में जनगणना हुई थी। उसकी रिपोर्ट के अनुसार वहाँ अवधी बोलने वाले २.४७ प्रतिशत, थारू बोलने वाले ५.८३ प्रतिशत, भोजपुरी बोलने वाले ७.५३ प्रतिशत और सबसे अधिक मैथिली बोलने वाले १२.३० प्रतिशत हैं। वहाँ हिन्दी बोलने वालों की संख्या सिर्फ १ लाख ५ हजार है। यानी, बाकी लोग हिन्दी जानते ही नहीं। मैने कई बार नेपाल की यात्रा की है। काठमांडू में भी सिर्फ हिन्दी जानने से काम चल जाएगा। नेपाल में एक करोड़ से अधिक सिर्फ मधेसी मूल के हैं। भारत से बाहर दक्षिण एशिया में सबसे अधिक हिन्दी फिल्में यदि कहीं देखी जाती हैं तो वह नेपाल है। ऐसी दशा में वहाँ हिन्दी भाषियों की संख्या को एक लाख पाँच हजार बताने से बढ़कर बेईमानी और क्या हो सकती है? हिन्दी को टुकड़ो-टुकड़ों में बाँटकर जनगणना करायी गई और फिर अपने अनुकूल निष्कर्ष निकाल लिया गया।

ठीक यही साजिश भारत में भी चल रही है। हिन्दी की सबसे बड़ी ताकत उसकी संख्या है। इस देश की आधी से अधिक आबादी हिन्दी बोलती है और यह संख्या बल बोलियों के नाते है। बोलियों की संख्या मिलकर ही हिन्दी की संख्या बनती है। यदि बोलियाँ आठवीं अनुसूची में शामिल हो गईं तो आने वाली जनगणना में मैथिली की तरह भोजपुरी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी आदि को अपनी मातृभाषा बताने वाले हिन्दी भाषी नहीं गिने जाएँगे और तब हिन्दी को मातृ-भाषा बताने वाले गिनती के रह

जाएँगे, हिन्दी की संख्या बल की ताकत स्वत: खत्म हो जाएगी और तब अँग्रेजी को भारत की राजभाषा बनाने के पक्षधर उठ खड़े होंगे और उनके पास उसके लिए अकाट्य वस्तुगत तर्क होंगे। (अब तो हमारे देश के अनेक ***काले अँग्रेज*** बेशर्मी के साथ अँग्रेजी को भारतीय भाषा कहने भी लगे हैं।) उल्लेखनीय है कि सिर्फ संख्या-बल की ताकत पर ही हिन्दी, भारत की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है।

मित्रो, हिन्दी क्षेत्र की विभिन्न बोलियों के बीच एकता का सूत्र यदि कोई है तो वह हिन्दी ही है। हिन्दी और उसकी बोलियों के बीच परस्पर पूरकता और सौहार्द का रिश्ता है। हिन्दी इस क्षेत्र की ***जातीय भाषा*** है जिसमे हम अपने सारे औपचारिक और शासन संबंधी काम काज करते हैं। यदि हिन्दी की तमाम बोलियाँ अपने अधिकारों का दावा करते हुए संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हो गईं तो हिन्दी की राष्ट्रीय छवि टूट जाएगी और राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी हैसियत भी संदिग्ध हो जाएगी।

इतना ही नहीं, इसका परिणाम यह भी होगा कि मैथिली, ब्रजी, राजस्थानी आदि के साहित्य को विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रमों से हटाने के लिए हमें विवश होना पड़ेगा। विद्यापति को अब तक हम हिन्दी के पाठ्यक्रम में पढ़ाते आ रहे थे । अब हम उन्हें पाठ्यक्रम से हटाने के लिए बाध्य हैं। अब वे सिर्फ मैथिली के कोर्स में पढ़ाये जाएँगे। क्या कोई साहित्यकार चाहेगा कि उसके पाठकों की दुनिया सिमटती जाय़ ?

हिन्दी (हिन्दुस्तानी) जाति इस देश की सबसे बड़ी जाति है। वह दस राज्यों में फैली हुई है। इस देश के अधिकाँश प्रधान मंत्री हिन्दी जाति ने दिए हैं। भारत की राजनीति को हिन्दी जाति दिशा देती रही है। इसकी शक्ति को छिन्न–भिन्न करना है। इनकी बोलियों को संवैधानिक दरजा दो। इन्हें एक-दूसरे के आमने-सामने करो। इससे एक ही तीर से कई निशाने लगेंगे। हिन्दी की संख्या बल की ताकत स्वत: खत्म हो जाएगी। हिन्दी भाषी आपस में बँटकर लड़ते रहेंगे और ज्ञान की भाषा से दूर रहकर कूपमंडूक बने रहेंगे। बोलियाँ हिन्दी से अलग होकर अलग-थलग पड़ जाएँगी और स्वत: कमजोर पड़कर खत्म हो जाएँगी।

मित्रो, चीनी का सबसे छोटा दाना पानी में सबसे पहले घुलता है। हमारे ही किसी अनुभवी पूर्वज ने कहा है, "*अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च। अजा पुत्रं बलिं दद्यात दैवो दुर्बल घातक:।*" अर्थात् घोड़े की बलि नहीं दी जाती, हाथी की भी बलि नही दी जाती और बाघ के बलि की तो कल्पना भी नही की जा सकती। बकरे की ही बलि दी जाती है। दैव भी दुर्बल का ही घातक होता है।

अब तय हमें ही करना है कि हम बाघ की तरह बनकर रहना चाहते हैं या बकरे की तरह।

हम सबसे पहले अपने माननीय सांसदों एवं अन्य जनप्रतिनिधियों से प्रार्थना करते हैं कि वे अत्यंत गंभीर और दूरगामी प्रभाव डालने वाली इस आत्मघाती माँग पर पुनर्विचार करें और भावना में न बहकर अपनी राजभाषा हिन्दी को टूटने से बचाएँ।

हम हिन्दी समाज के अपने बुद्धिजीवियों से साम्राज्यवाद और व्यूरोक्रेसी की मिली भगत से रची जा रही इस साजिश से सतर्क होने और एकजुट होकर इसका पुरजोर विरोध करने की अपील करते हैं।

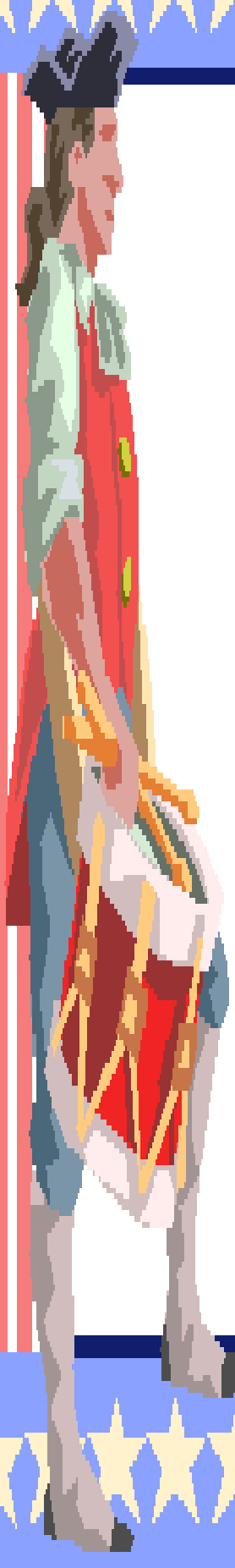

पारित प्रस्ताव

डॉ. पद्मेश गुप्त

चर्चों पर चर्चे भी बहुत हो गए
पर्चों पर पर्चे भी बहुत हो गए
और अब तो मेरे दोस्तों
खर्चे पर खर्चे भी बहुत हो गए।

काम नहीं चलेगा अब
अध्याय में विराम से
यात्रा में विश्वास से।

जो लिखा, जो पढ़ा, जो सुना
इस दौर की जिस दौड़ को, हमने चुना
जाती है वह उस सीढ़ी की ओर
जो सीढ़ी जाती है नई पीढ़ी की ओर।

अब यदि हमने नहीं दी गति
स्वयं को दौड़ कर
ये खर्चे, ये चर्चे, ये पर्चे
सब सो जाएँगे
यहीं, कफ़न को ओढ़कर!

एकबार फिर,
किनारे ही डूब जाएगी नाव,
हम पर हँसेगा
एक और नया पारित प्रस्ताव।

शापग्रस्त पापग्रस्त समंदर खारे का खारा

डॉ. अशोक चक्रधर

चौं रे चम्पू, जापान में तौ गज़ब है गयौ रे, का नई खबर ऐ?

खबरें तो अच्छी नहीं हैं चचा! नुकसान का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। छब्बीस दिसंबर दो हज़ार चार को हम भी अपने देश के दक्षिण में सुनामी का कहर झेल चुके हैं। जापान में तो दोहरी मार पड़ी। वहां भयंकर भूकंप के साथ सर्वनाशी सुनामी भी आ गई।

सुनामी कायकी ऐ रे, पूरी कुनामी ऐ!

कुलक्षणी कुनामी ही है चचा। उन्नीस सौ सैंतालीस के हिरोशिमा-नागासाकी विध्वंस से ज़्यादा बड़ा संकट आया है जापान में। नाभिकीय रिएक्टरों पर ख़तरा अभी भी मंडरा रहा है। लाखों लोग गायब हैं। अरबों खरबों की सम्पदा कबाड़खाने में बदल गई है। धरती की धुरी इतनी खिसक गई कि जीपीआरएस के नेवीगेशन सॉफ्टवेयर गलत परिणाम दिखा रहे हैं। दुनिया भर में मौसम में क्या बदलाव आएँगे राम जाने। विनाश की तस्वीरें अविश्वसनीय लगती हैं। मुझे तो इसी नौ अप्रेल को जापान जाना था चचा। हो सकता है चला भी जाऊँ, राहत की कुछ कविताएँ सुना कर आऊँ।

कबता सुनिबे की फुरसत कौनके पास होयगी रे!

जाऊँगा तो कुछ तो करूँगा, मलवा उठवाने में ही मदद करूँगा। चचा, दो हज़ार चार में तेरह दिसंबर को मैं अपने पूरे परिवार के साथ दक्षिण की यात्रा पर गया था। महाबलीपुरम के जिस रिज़ॉर्ट में ठहरे थे उसका नामोनिशान नहीं बचा। तेरह दिन बाद गए होते तो सबकी तेरहवीं हो चुकी होती।

उल्टी-सीदी बात मती कर। ढंग की बात कर!

ढंग की बात तो ये है चचा कि जापानी नागरिक बड़े हौसले वाले होते हैं। बहुत जल्दी अपने देश को फिर से खड़ा करके दिखा देंगे। पूरी दुनिया उनके साथ है। वह अमरीका भी साथ है, जिसने बम बरसाए थे।

तैनै कोई कबता लिखी का?

एक लिखी थी, तभी दो हज़ार चार में, आज याद आ रही है।

सुना!

बहुत पहले, बहुत पहले!
बहुत पहले से भी बहुत पहले!!
इस असीम अपार अंतरिक्ष में,
घूमती विचरती हमारी धरती!
बड़े-बड़े ग्रह-नक्षत्रों के लिए
एक नन्हा सा चिराग थी,
जिसके चारों ओर आग ही आग थी।
बहुत पहले, बहुत पहले!
बहुत पहले से भी बहुत पहले!!

जब प्रकृति की सर्वोत्तम कृति,
मनुष्य का कोई हत्यारा नहीं था,
तब समंदर का पानी भी
खारा नहीं था।
बहुत पहले, बहुत पहले!
बहुत पहले से भी बहुत पहले!!
जब बिना किसी पोथी के
इंसान एक दूसरे की आँखों में
प्यार के ढाई आखर बाँचता था
तो समंदर अपनी उत्ताल लय ताल में नाचता था।
लहर लहर बूँद बूँद उछलता था
तट पर बैठे प्रेमियों के
पैर छूने को मचलता था।
अचानक किसी सुमात्रा में
बेहद कुमात्रा में तलहटी कांपी,
तो जाने कौन सी कुलक्षिणी कुनामी,
पर कहने को सुनामी लहरों ने लंबी दूरी नापी।
वो लहरें झोंपड़ियों मकानों बस्तियों को ढहा कर ले गईं,
प्यारे-प्यारे इंसानों को बहा कर ले गईं।
बहुत पहले बहुत पहले
दिल दहले बहुत दहले।
जिन्होंने भी अपने-अपने आत्मीय खोए,
वे ख़ूब-ख़ूब रोए।
झोंपड़ी के आँसू बहे,
बस्ती के आँसू बहे,
शहरों के आँसू बहे,
मुल्कों के आँसू बहे।
इतने सारे मानो रुके हुए हों सदियों से आँसू,
पानी रो तो मिलें नदियों से आँसू।
और जैसे ही व्याकुल सिरफिरा पीड़ा का पहला आँसू,
समंदर में गिरा,
समंदर सारा का सारा,
पलभर में हो गया खारा।
बहुत पहले, बहुत पहले!
बहुत पहले से भी बहुत पहले!!

सारा का सारा,
समंदर हो गया खारा।
लेकिन ज़िंदगी नहीं हारी,
न तो हुई खारी,
बनी रही ज्यों कि त्यों,
प्यारी की प्यारी,
क्योंकि हर गीली आँख के कंधे पर,
राहत की चाहत का हाथ था,
इंसान का इंसानियत से,
जन्म-जन्मान्तर का साथ था।
फिर से चूल्हे सुलगे,
और गर्म अँगीठी हो गईं,
मुहब्बत की नदियाँ
फिर से मीठी हो गईं।
फिर से महके तंदूर,
फिर से गूँजे और चहके संतूर,
फिर से रचे गए उमंगों के गीत,
फिर से गूँजा जीवन-संगीत।
शापग्रस्त पापग्रस्त समंदर रहा खारे का खारा,
लेकिन उसने भी देखा हौसला हमारा।
मरने नहीं देंगे किसी को हम फिर से आ रहे हैं,
तेरी छाती पर सवारी करने।
इस बार ज़्यादा मज़बूत है, हमारी नौका।
छोड़ेंगे नहीं जीने का एक भी मौका।

पिता जवाहरलाल नेहरू जी का पत्र पुत्री इन्दिरा के नाम

अनुवाद : प्रेमचंद

(जवाहरलाल नेहरू जी की पुस्तक Letters from a Father to His Daughter से. यह पत्र नेहरूजी ने अपनी बेटी इंदिरा प्रियदर्शिनी (बाद में, गाँधी) को तब लिखा था जब वे दस साल की थीं)

संसार पुस्तक है

जब तुम मेरे साथ रहती हो तो अकसर मुझसे बहुत-सी बातें पूछा करती हो और मैं उनका जवाब देने की कोशिश करता हूँ। लेकिन, अब, जब तुम मसूरी में हो और मैं इलाहाबाद में, हम दोनों उस तरह बातचीत नहीं कर सकते। इसलिए मैंने इरादा किया है कि कभी-कभी तुम्हें इस दुनिया की और उन छोटे-बड़े देशों की जो इन दुनिया में हैं, छोटी-छोटी कथाएँ लिखा करूँ। तुमने हिंदुस्तान और इंग्लैंड का कुछ हाल इतिहास में पढ़ा है। लेकिन इंग्लैंड केवल एक छोटा-सा टापू है और हिंदुस्तान, जो एक बहुत बड़ा देश है, फिर भी दुनिया का एक छोटा-सा हिस्सा है। अगर तुम्हें इस दुनिया का कुछ हाल जानने का शौक है, तो तुम्हें सब देशों का, और उन सब जातियों का जो इसमें बसी हुई हैं, ध्यान रखना पड़ेगा, केवल उस एक छोटे-से देश का नहीं जिसमें तुम पैदा हुई हो।

मुझे मालूम है कि इन छोटे-छोटे खतों में बहुत थोड़ी-सी बातें ही बतला सकता हूँ। लेकिन मुझे आशा है कि इन थोड़ी-सी बातों को भी तुम शौक से पढ़ोगी और समझोगी कि दुनिया एक है और दूसरे लोग जो इसमें आबाद हैं हमारे भाई-बहन हैं। जब तुम बड़ी हो जाओगी तो तुम दुनिया और उसके आदमियों का हाल मोटी-मोटी किताबों में पढ़ोगी। उसमें तुम्हें जितना आनंद मिलेगा उतना किसी कहानी या उपन्यास में भी न मिला होगा।

यह तो तुम जानती ही हो कि यह धरती लाखों करोड़ों, वर्ष पुरानी है, और बहुत दिनों तक इसमें कोई आदमी न था। आदमियों के पहले सिर्फ जानवर थे, और जानवरों से पहले एक ऐसा समय था जब इस धरती पर कोई जानदार चीज़ न थी। आज जब यह दुनिया हर तरह के जानवरों और आदमियों से भरी हुई है, उस जमाने का ख़याल करना भी मुश्किल है जब यहाँ कुछ न था। लेकिन विज्ञान जाननेवालों और विद्वानों ने, जिन्होंने इस विषय को खूब सोचा और पढ़ा है, लिखा है कि एक समय ऐसा था जब यह धरती बेहद गर्म थी और इस पर कोई जानदार चीज़ नहीं रह सकती थी। और अगर हम उनकी किताबें पढ़ें, पहाड़ों और जानवरों की पुरानी हड्डियों को गौर से देखें तो हमें ख़ुद मालूम होगा कि ऐसा समय ज़रूर रहा होगा।

तुम इतिहास किताबों में ही पढ़ सकती हो। लेकिन पुराने ज़माने में तो आदमी पैदा ही न हुआ था; किताबें कौन लिखता? तब हमें उस जमाने की बातें कैसे मालूम हों? यह तो नहीं हो सकता कि हम बैठे-बैठे हर एक बात सोच निकालें। यह बड़े मजे की बात होती, क्योंकि हम जो चीज़ चाहते सोच लेते, और सुंदर परियों की कहानियाँ गढ़ लेते। लेकिन जो कहानी किसी बात को देखे बिना ही गढ़ ली जाए वह ठीक कैसे हो सकती है? लेकिन ख़ुशी की बात है कि उस पुराने ज़माने की लिखी हुई किताबें न होने पर भी कुछ ऐसी चीजें हैं जिनसे हमें उतनी ही बातें मालूम होती हैं जितनी किसी किताब से होतीं। ये

पहाड़, समुद्र, सितारे, नदियाँ, जंगल, जानवरों की पुरानी हड्डियाँ और इसी तरह की और भी कितनी ही चीजें हैं जिनसे हमें दुनिया का पुराना हाल मालूम हो सकता है। मगर हाल जानने का असली तरीका यह नहीं है कि हम केवल दूसरों की लिखी हुई किताबें पढ़ लें, बल्कि खुद संसार-रूपी पुस्तक को पढ़ें। मुझे आशा है कि पत्थरों और पहाड़ों को पढ़ कर तुम थोड़े ही दिनों में उनका हाल जानना सीख जाओगी। सोचो, कितनी मजे की बात है। एक छोटा-सा रोड़ा जिसे तुम सड़क पर या पहाड़ के नीचे पड़ा हुआ देखती हो, शायद संसार की पुस्तक का छोटा-सा पृष्ठ हो, शायद उससे तुम्हें कोई नई बात मालूम हो जाय। शर्त यही है कि तुम्हें उसे पढ़ना आता हो। कोई जबान, उर्दू, हिंदी या अँग्रेजी, सीखने के लिए तुम्हें उसके अक्षर सीखने होते हैं। इसी तरह पहले तुम्हें प्रकृति के अक्षर पढ़ने पड़ेंगे, तभी तुम उसकी कहानी उसकी पत्थरों और चट्टानों की किताब से पढ़ सकोगी। शायद अब भी तुम उसे थोड़ा-थोड़ा पढ़ना जानती हो। जब तुम कोई छोटा-सा गोल चमकीला रोड़ा देखती हो, तो क्या वह तुम्हें कुछ नहीं बतलाता? यह कैसे गोल, चिकना और चमकीला हो गया और उसके खुरदरे किनारे या कोने क्या हुए? अगर तुम किसी बड़ी चट्टान को तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर डालो तो हर एक टुकड़ा खुरदरा और नोकीला होगा। यह गोल चिकने रोड़े की तरह बिल्कुल नहीं होता। फिर यह रोड़ा कैसे इतना चमकीला, चिकना और गोल हो गया? अगर तुम्हारी आँखें देखें और कान सुनें तो तुम उसी के मुँह से उसकी कहानी सुन सकती हो। वह तुमसे कहेगा कि एक समय, जिसे शायद बहुत दिन गुजरे हों, वह भी एक चट्टान का टुकड़ा था। ठीक उसी टुकड़े की तरह, उसमें किनारे और कोने थे, जिसे तुम बड़ी चट्टान से तोड़ती हो। शायद वह किसी पहाड़ के दामन में पड़ा रहा। तब पानी आया और उसे बहा कर छोटी घाटी तक ले गया। वहाँ से एक पहाड़ी नाले ने ढकेल कर उसे एक छोटे-से दरिया में पहुँचा दिया। इस छोटे से दरिया से वह बड़े दरिया में पहुँचा। इस बीच वह दरिया के पेंदे में लुढ़कता रहा, उसके किनारे घिस गए और वह चिकना और चमकदार हो गया। इस तरह वह कंकड़ बना जो तुम्हारे सामने है। किसी वजह से दरिया उसे छोड़ गया और तुम उसे पा गईं। अगर दरिया उसे और आगे ले जाता तो वह छोटा होते-होते अंत में बालू का एक जर्रा हो जाता और समुद्र के किनारे अपने भाइयों से जा मिलता, जहाँ एक सुंदर बालू का किनारा बन जाता, जिस पर छोटे-छोटे बच्चे खेलते और बालू के घरौंदे बनाते।

अगर एक छोटा-सा रोड़ा तुम्हें इतनी बातें बता सकता है, तो पहाड़ों और दूसरी चीजों से, जो हमारे चारों तरफ हैं, हमें और कितनी बातें मालूम हो सकती हैं।

पत्थर के ऊपर पत्थर

डॉ. परमानंद पांचाल

किसने रख दिए हैं ये पत्थर के ऊपर पत्थर,
कभी देखा है इन्हें हैदराबाद के पथ पर?
न कोई जोड़ है, न कोई मसाला है, न कोई रहने वाला है,
फिर भी रखे हैं, इतने सारे ये पत्थर के ऊपर पत्थर.
एक नहीं, दो भी नहीं, तीन-तीन और चार- चार,
किस करीने से रख दिए हैं, ये पत्थर के ऊपर पत्थर.
हिलते नहीं, खिसकते नहीं और गिरते भी नहीं हैं ये,
कौन जाने किस जमाने से रखे हैं, ये पत्थर के ऊपर पत्थर.
प्रकृति ही जानती है हम क्या बतायें कैसे?
उसने रख दिए हैं, ये पत्थर के ऊपर पत्थर.
हमें डर है तो बस बेलगाम आबादी से है,
क्या रहने भी देगी वह यूँ ही रखे ये पत्थर के ऊपर पत्थर.
इनके सीने को चीर कर बन रहे हैं मकानों पे मकान,
फिर कहाँ रह जायेंगे रखे ये पत्थर के ऊपर पत्थर.
किसने रख दिए हैं ये पत्थर के ऊपर पत्थर,
कभी देखा है इन्हें हैदराबाद के पथ पर?

विजयादशमी

शकुंतला पाराशर

विजयादशमी पर्व है
असत्य पर सत्य की विजय का
दुराचार पर सदाचर की विजय का
रावण पर राम की विजय का.
इतिहास दुहराते हैं
गाँव-गाँव, नगर-नगर दशहरा मनाते हैं
लकड़ी के सीखचों का रावण बनाते हैं
कपड़ों को प्लास्टर ऑफ़ पेरिस से चिपकाते हैं
कागज़ों से लपेटकर रंगों से सजाते हैं.
बहत्तर फुट का रावण सिर को घुमाता है
हाथ हिलाता है, अट्टहास करता है
आतिशबाजी होती है, रावण धू-धूकर जलता है
रावण को जलते देख एक प्रश्न मस्तिष्क में उभरता है
रावण तो जल गया
पर क्या हम अन्तर के रावण को जला पाये हैं?
मन में छिपे अपराधों को भस्म कर पाये हैं?
रावण तो रावण था वह अंत तक रावण ही रहा
उसने दुष्कर्म को छिपाया नहीं, अंत तक अडिग रहा
आज समाज के रावण सत्य का मुखौटा लगाये
असत्य आचरण करते हैं
सदाचार का बाना पहने दुराचारों में लिप्त रहते हैं
अपहरणकर्ता, भ्रष्टाचारी, बलात्कारी
प्रतिष्ठित नागरिक बनने का दम भरते हैं.
काश! हम समाज के रावणों को समाप्त कर पाते
अपने अन्तर के रावण को भस्म कर पाते
तो आज का प्रजातन्त्र सभी रूप में रामराज्य होता
और विजयादशमी का पर्व सार्थक होता.

भगवान धन्वंतरी व यम पूजन का दिन धनतेरस

श्याम नारायण रंगा 'अभिमन्यु'

पाँच दिन के दीपोत्सव का आगाज धनतेरस से ही होता है। हिन्दू पंचाग के अनुसार कार्तिक बदी तेरस को धनतेरस के रूप में मनाया जाता है। धनतेरस आयुर्वेद के अधिष्ठाता भगवान धन्वंतरी का जन्मदिन है इस कारण यह दिन धनवंतरी जयंति के रूप में मनाया जाता है। माना जाता है कि जब देवताओं व दानवों ने समुद्र मंथन किया तो आज ही के दिन हाथ में औषधि कलष लेकर भगवान धन्वंतरी प्रकट हुए थे और इनको स्वास्थ्य का देवता माना गया और इसी रूप में इनकी पूजा हुई। इसी कारण भगवान धतवंतरी को आरोग्य का देवता माना जाता है। मनुष्य को अपने स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मस्तिष्क के लिए भगवान धन्वंतरी की पूजा करनी चाहिए। प्रकाश पर्व का आज प्रथम दिन है। शास्त्रों के अनुसार धनतेरस के दिन शाम को घर के मुख्य द्वार पर यमराज के निमित्त एक अन्न से भरे पात्र में दक्षिण मुख करके दीपक रखने एवं यमराज से प्रार्थना करने पर असामयिक मृत्यु से बचा जा सकता है। ऐसा करने से दीर्घ जीवन व आरोग्य की प्राप्ति होती है। आधुनिक समय में डॉक्टर व चिकित्सा पेशे से जुड़े लोग भगवान धनवंतरी की विशेष पूजा अर्चना कर सकते हैं।

देवी लक्ष्मी धन की देवी है और धन की प्राप्ति के लिए स्वस्थ रहना भी जरूरी है और यही कारण है कि धन की देवी की पूजा से दो दिन पहले ही स्वास्थ्य के देवता की पूजा की जाती है।

पौराणिक कथा के अनुसार एक बार भगवान विष्णु माता लक्ष्मी के साथ पृथ्वी पर घूमने आए। कुछ देर बाद भगवान विष्णु ने लक्ष्मी को एक स्थान पर ही ठहरने का कह कर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। परन्तु माता लक्ष्मी ने भगवान विष्णु की आज्ञा नहीं मानी और उनके पीछे पीछे चल दी। कुछ दूरी पर चलने के बाद एक गन्ने का और एक सरसों का खेत मिला, माता लक्ष्मी सरसों के फूल से श्रृँगार करने लगी और गन्ना तोड़कर चूसने लगी। भगवान लौटे तो उन्होंने माता लक्ष्मी को गन्ना चूसते हुए देखा। इस पर भगवान विष्णु क्रोधित हो गए और माता लक्ष्मी को श्राप दे दिया कि जिस किसान का यह खेत है उसके यहाँ तुम रहो और बारह साल तक किसान की सेवा करो। ऐसा कहकर भगवान विष्णु अर्न्तध्यान हो गए और माता लक्ष्मी वहीं किसान के घर रह कर किसान की सेवा करने लगी। किसान बहुत गरीब था और किसान की ऐसी दशा देखकर माता लक्ष्मी द्रवित हो जाती हैं और उसकी पत्नी को देवी लक्ष्मी अर्थात् अपनी ही मूर्ति की पूजा करने को कहती है। किसान की पत्नी प्रतिदिन माता लक्ष्मी की मूर्ति की पूजा करती है और 12 साल जहाँ माता लक्ष्मी स्वयं वास करे वहाँ दरिद्रता कैसे रह सकती है। इस प्रकार माँ लक्ष्मी किसान को धन धान्य व सम्पत्ति से परिपूर्ण कर देती है। जब बारह साल पूर्ण हो जाते हैं तो भगवान विष्णु लक्ष्मी को लेने आते हैं पर वह किसान माता लक्ष्मी को जाने नहीं देता है। वह हठ कर लेता है और माता का दामन पकड़ कर रोक लेता है। जब भगवान विष्णु किसान को चार कौड़ियाँ देते हैं और कहते हैं कि तुम परिवार सहित गंगा स्नान करने जाओ और इन कौडियों को गंगा जल में छोड़ देना जब तक हम यहीं रहेंगे। किसान ऐसा ही करता है। जैसे ही किसान गंगाजी में कौडिया छोड़ता है गंगाजी के अंदर से चार हाथ बाहर निकलते हैं। किसान पूछता है कि ये हाथ किसके हैं तो माता गंगा कहती है कि ये हाथ मेरे हैं और तुम्हें जिसने ये कौड़ियाँ दी है वे भगवान विष्णु व माता लक्ष्मी हैं अतः तुम उनको अपने घर से वापस मत जाने देना वरना तुम वापस दरिद्र हो जाओगे। वापस आने पर किसान को भगवान विष्णु पूरी बात समझाते हैं और हठ नहीं करने का कहते हैं। तब माता लक्ष्मी किसान को कहती है कि अगर तुम मुझे रोकना चाहते हो तो कल धनतेरस है तुम

अपने घर को साफ सुथरा रखना और रात में घी का दीपक जलाना और मैं तुम्हारे घर आऊँगी उस वक्त तुम मेरी पूजा करना परन्तु मैं अदृष्य रहूँगी। किसान ने देवी लक्ष्मी की बात मान ली और उन्हें जाने दिया और बताई विधि से माँ लक्ष्मी की धनतेरस को पूजा की। ऐसा करने से उसका घर वैभव से सम्पन्न हो गया। इस प्रकार किसान प्रतिवर्ष माता लक्ष्मी की पूजा करने लगा। तब से धनतेरस को दीपक जलाकर माता की पूजा की प्रथा चली आ रही है।

धनतेरस पर यम की पूजा भी की जाती है और यम के नाम का दीपक जलाया जाता है। इस संदर्भ में भी एक पौराणिक कथा है जिसके अनुसार प्रचीन काल में हेम नाम का एक राजा था। राजा हेम को संतान के रूप में एक पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा ने पुत्र की जन्मकुण्डली बनवाई और ज्योतिषियों व पण्डितों से अपने पुत्र के भविष्य के बारे में पूछा। राजा को पंडितों ने बताया कि जब आपके पुत्र का विवाह होगा उसके ठीक चार दिन बाद ही आपके पुत्र की मृत्यु हो जाएगी। ऐसा सुन राजा दुःख से व्याकुल हो उठा। कुछ समय बाद राजा ने पुत्र की शादी करने का निश्चय लिया। राजा की पुत्रवधु को इस बात का पता चला तो उसने अपने पति को अकाल मृत्यु से बचाने का निश्चय किया। राजा की पुत्रवधु ने विवाह के चौथे दिन अपने कमरे के बाहर गहने व सोने चाँदी के सिक्कों का और धन सम्पत्ति का ढेर लगा दिया और स्वयं अपने पति को रातभर जगाकर रखा। राजा की पुत्रवधु अपने पति को कहानियाँ और गाने सुनाती रही। मध्यरात्रि को यम रूपी साँप उसके पति को डसने के लिए आता है लेकिन वह उस धन सम्पत्ति के ढेर को पार नहीं कर पाता और राजकुमारी का गाना सुनने में मुग्ध हो जाता है। इस प्रकार सारी रात बीत जाती है और यम राजकुमार के प्राण लिए बिना ही वापस लौट जाता है। इस प्रकार राजकुमारी अपने पति के प्राणों की रक्षा कर लेती है। माना जाता है कि तभी से लोग लम्बी आयु प्राप्त करने व अकाल मृत्यु से बचने के लिए अपने घर के बाहर यम के नाम का दीपक जलाते हैं।

एक और प्रसंग के अनुसार एक बार यमदूतों से यमराज को कहा कि अकाल मृत्यु से हमारे मन भी पसीज जाते हैं और हम नहीं चाहते कि किसी की अकाल मृत्यु हो। यमराज ने कहा कि हम भी क्या करें विधि के विधान के आगे हमारी भी नहीं चलती और हमें अकाल मृत्यु जैसा अप्रिय काम करना पड़ता है। तब यमराज ने अकाल मृत्यु का उपाय बताते हुए कहा कि धनतेरस के दिन विधि विधान से पूजा करने से और दीपदान करने से अकाल मृत्यु से छुटकारा मिलेगा। अतः जहाँ और जिस घर में ऐसा पूजन और दीपदान होगा वहाँ अकाल मृत्यु का भय नहीं होगा। यहीं से धनतेरस के दिन धनवंतरी के साथ यमपूजन की प्रथा भी चालू हुई।

धनतेरस के दिन नया बर्तन खरीदने की लोक मान्यता भी जुड़ी है और धनतेरस के दिन लोग बाजारों से नया बर्तन खरीदते हैं। ऐसा माना जाता है कि भगवान धनवंतरी कलश लेकर प्रकट हुए थे और हाथ में कलश होने के कारण नया बर्तन खरीदने की परम्परा चालू हुई। परन्तु कुछ पंडितों का कहना है कि यह सिर्फ़ लोकमान्यता है पुराणों में नया बर्तन खरीदने से संबंधित कोई भी प्रसंग नहीं मिलता है। भगवान धनवंतरी के नाम के आगे धन लगा होने से यह परम्परा चली होगी। इस दिन शंख व आयुर्वेद के ग्रंथों के पूजन का भी महत्व माना गया है।

यह दीपों का पावन उत्सव

डॉ. महेश 'दिवाकर'

यह दीपों का पावन उत्सव
खुशियों का संसार बसायेँ
युग-वसुधा को करे प्रफुल्लित
सुखमय घर-परिवार बनायें.

परमेश्वर से करें प्रार्थना
धरती से आतंक मिटायें
शुभ हो! शुभ हो! मानव जीवन
अंधकार को दूर भगायें.

दीप-दीप मिल करें रोशनी
सबका जीवन सफल बनायें
वैभव की वर्षा हो जग में
सारे दीपावली मनायें.

सारी दुनिया रहे प्रेम से
द्वेष-तिमिर को दूर भगायें
अंधकार में रहे न कोई
अद्‌भुत मंगल ज्योति जलायें.

आओ! वैभव के मतवालों!
ऐसी मिल कर अलख जगायें
भोजन, वस्त्र, मकान सभी को
दीवाली पर सहज दिलायें

धूमिल रेखा

शैल अग्रवाल

तेज़ प्रकाश देते दीये को
जब तुम कटोरी से ढक आए थे
तो वह सहमा और सिसका नहीं था
ना ही उसने ठंडी आहें ही भरी थीं
उसने तो बुझने से पहले

बस इतना ही कहा था -

डरना मत मेरे दोस्त
देखना मेरी यह धूमिल रेखा भी
तुम्हारे बहुत ही काम आएगी
तुम्हारी उदास आँखों में कभी
काजल बनकर मुस्काएगी।

रानी लक्ष्मी बाई

(रानी लक्ष्मी बाई के पावन-पुनीत जन्म-दिन पर श्रद्धांजलि)

सुभद्रा कुमारी चौहान

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कानपूर के नाना की, मुँहबोली बहन छबीली थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह, नाना के सँग खेली थी,
बरछी ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी।
वीर शिवाजी की गाथायें उसको याद ज़बानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार।
महाराष्टर-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई,
किंतु कालगति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाई,
रानी विधवा हुई, हाय! विधि को भी नहीं दया आई।
निसंतान मरे राजाजी रानी शोक-समानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फ़ौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया।
अश्रुपूर्णा रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

अनुनय विनय नहीं सुनती है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौज़ी ने पैर पसारे, अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महरानी थी,

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

छिनी राजधानी दिल्ली की, लखनऊ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठुर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपुर, तंजौर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात?
जबकि सिंध, पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात।
बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी रोयीं रनवासों में, बेगम ग़म से थीं बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार,
सरे आम नीलाम छापते थे अँग्रेज़ों के अखबार,
'नागपूर के ज़ेवर ले लो लखनऊ के लो नौलख हार'।
यों परदे की इज़्ज़त परदेशी के हाथ बिकानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कुटियों में भी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण-चण्डी का कर दिया प्रकट आहवान।
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपूर, कोल्हापूर में भी कुछ हलचल उकसानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

इस स्वतंत्रता महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुंधूपंत, ताँतिया, चतुर अज़ीमुल्ला सरनाम,
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुरबानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

इनकी गाथा छोड़, चले हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वाकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुया द्वन्द्ध असमानों में।
ज़ख्मी होकर वाकर भागा, उसे अजब हैरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरंतर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना तट पर अँग्रेज़ों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार।
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

दीपावली : पाँच अनुभव

देवराज

(एक)

प्रकाश की गतियाँ
गुज़रती हैं मस्तिष्क से
हवा खोल देती है
सारे दरवाज़े खिड़कियाँ
दीपों की तेजस्वी दुनिया में
उछल-कूद मचाते बच्चे
जोड़ते हैं किलकारियों के मेले
शहर और गाँव की भेदक रेखा को
सबसे बड़ी चुनौती देते हुए
निश्शेष नहीं हुई है अभी
मनुष्य बने रहने की संभावनाएँ॥

(दो)

प्रकाश की भंगिमाएँ
रचती हैं पुकारें
भाषा के पार
अर्थों की सीमाएँ खण्डित करते हुए
घोंसले की नींद में
सपनों की दुनिया रचते बच्चों को
भावुक होकर निहारने के बाद
टहनी पर आ बैठी चिड़िया
सबसे पहले
खोलना शुरु कर देती है
नदी के भीतर आकार लेती
अरुणाभा के अभिनव रहस्य ॥

(तीन)

प्रकाश की लहरें
टकराती हैं रात-दिन
अनंत के तटों से
तोड़ डालती हैं
प्रकाश की लहरें
अनंत के अदृश्य किनारों को
एक और अभिनव अरूप
अनंत रचने के लिए
जहाँ कहीं ठहर जाती हैं
यात्राओं की कल्पनाएँ
वहीं बदलने लगती है
सभ्यता खण्डहरों में॥

(चार)

प्रकाश की ध्वनियाँ
झाँकती हैं नक्षत्रों की आँखों में
पहचानने के लिए
अपनी पर्छाइयों की
उभरती विलीन होती आकृतियाँ
मन को बाँध लेता है
तितली की उड़ान में
आकाश का निमन्त्रण
जलधर की उँगली थामे
चला आता है इन्द्र-धनुष
ठुमक ठुमक
बालकों की आँखों में
शाम ढले जुगनु
आवाज़ लगाते घूमते
प्रकाश की ध्वनियों को॥

(पाँच)

प्रकाश के सैनिक हैं
सूर्य और चन्द्रमा
असंख्य ब्रह्माण्डों में
ध्वज-वाहक प्रकाश के
असंख्य सूर्य
असंख्य चन्द्रमा
पेड़ भी हैं
प्रकाश के सैनिक
और आदमी भी
प्रकाश की सेना का
सबसे पहला सिपाही
लड़ रहा युद्ध
अँधेरे के विरुद्ध
हर समय, हर जगह॥

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी	(शोध-ग्रन्थ)
संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित